DELHI UNIVERSITY
LIBRARY

HI UNIVERSITY LIBRARY

3M38:16 152 JO3T

878

Date of release for loan

be returned on or before the date last stamped

due charge of Six nP will be charged for each day

overtime

देवी चौधरानी

लेखक :

स्व० श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक :

श्री कमल, बी०ए०

सम्पादक :

पं० रूपनारायण पाण्डेय

प्रकाशक :

श्री प्रभाकर साहित्यालोक,

रानी कटरा, लखनऊ

तृतीय संस्करण मूल्य दो रुपया

भूमिका

अपनी जन्मभूमि के प्रति प्रेम को उद्बुद्ध करने वाले लोकप्रिय राष्ट्रीय गान 'बन्देमातरम्' के रचयिता तथा विदेशी पठानो से आक्रान्त और अर्थलोलुप स्वेच्छाचारी अग्रेजो की ताजी गुलामी मे विकल, व उस समय के हिन्दू-समाज मे उत्पन्न धर्मान्धता के फलस्वरूप रूढिगत अनाचारों और कलुषित सस्करणो से पीडित, असहाय जनता मे स्वावलम्बन, स्वाभिमान, राष्ट्रीयता तथा भारतीय मौलिक सस्कारो मे आस्था के उद्बोदक, महा-महिमा-मण्डित बकिम, आज की राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक सभी क्रातियो के आदिस्रोत थे ।

सन् ८४२ ई० मे बगनरेश आदिशूर द्वारा, यज्ञ के लिये कान्यकुब्ज देश से आमत्रित और फिर बगाल मे ही बस गये श्री 'दक्ष' चट्टोपाध्याय से १८वी पीढी मे अवस्थी गगानन्द, 'चटर्जी वश' के 'फूलिया' नाम के एक अति कुलीन घराने के पूर्वपुरुष थे । इन्ही से ८वी पीढी मे, जिला 'चौबीस परगना' (बगाल) के काटालपाडा ग्राम मे भारत के सुवर्ण-कलश बंकिम ने सन् १८३८ ई० मे जन्म लेकर ५६ वर्ष की आयु मे सन् १८९४ ई० मे गोलोक-यात्रा की ।

अग्रेजी हुकूमत के उच्च-पदाधिकारी, रायबहादुर बकिमचन्द्र चटर्जी, सी० आई० ई० शासन के स्वेच्छाचार से सदैव लोहा लेने पर भी हुकूमत के अनन्य आदर के पात्र रहे । उस समय नेटिवों (काले भारतीय) की बिसात ही क्या थी ! फिर भी अंग्रेज इन नरशार्दूल के विरोधाभास से ही विचलित हो उठते थे । सरकार और जनता दोनो के ही अनीति-कारी वर्ग के लिए वे नृसिह स्वरूप थे । अग्रेजी दबदबे से आतंकित और पाश्चात्य चकाचौध मे मुग्ध, बगाल के निर्जीवप्राय उस बाबू-युग मे भी उनके साथ किसी अग्रेज का मुकदमा पड जाने पर उन गौराग प्रभु को कलकत्ता-बार मे एक भी वकील न मिलने से नतोन्मुख होना पड़ा था ।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रमेशचन्द्र दत्त, मधुसूदन दत्त, केशवसेन जैसे उनके समकालीन महापुरुषो मे, मेधावी, विलक्षण और आत्माभिमानी बंकिम का बडा आदर था । विश्वविख्यात टैगोर ने अपनी किशोरावस्था मे इस प्रतिभाशाली रोबीले व्यक्ति के दर्शन से मुग्ध होकर उनकी भूरि-भूरि प्रशसा जब-तब की है । उनका दार्शनिक ज्ञान और विश्लेषण-शक्ति उनके 'कृष्ण चरित्र', 'धर्मतत्त्व' तथा 'श्रीमद्भगवत गीता' पर टीका एव विवेचन से प्रगट है । राष्ट्रीय सघर्ष, जमीदारी उन्मूलन, विदेश यात्रा, पर्दा, स्त्रीशिक्षा, बहुविवाह, स्त्रियो तथा निम्नजातीय वर्ग की हेय दशा जैसे, भ्राति से उत्पन्न राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा धार्मिक अनेक वैषम्यो मे साम्य उत्पन्न करने की अभिरुचि और यत्किञ्चित्-प्राप्त सफलता या उथल-पुथल देश मे इधर जो हुई है, उसको सौ वर्ष पूर्व ही भारतीय दृष्टिकोण से अकुरित करने के फलस्वरूप ही वे मत्रदृष्टा अथवा ऋषि करके पूज्य है । 'अग्रेजी ही नही, देशीय भाषाओ मे भी श्रेष्ठतम सत्साहित्य का सृजन किया जा सकता है,' इस नूतन आत्मविश्वास के देनहार, वे आदि गुरु और भारतीय साहित्यिको, निर्भीक समालोचको तथा सुधारको के शिरोभूषण है ।

इनके उपन्यास, निबध, प्रहसन एव व्यग्य तथा इनके पत्र 'बग-दर्शन' मे प्रकाशित धार्मिक विवेचनो मे न केवल साहित्यसुलभ मनोरजन ही प्राप्त है वरन् घर और बाहर, हमारे सामने नित्य प्रस्तुत उलझनों व धर्म-सकटो मे, चिरतन के लिए पथ-प्रदर्शक यह एक अविनाशी साहित्य है । विस्तृत विवरण 'श्री प्रभाकर साहित्य लोक, लखनऊ' से शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली बकिम बाबू की पुष्कल जीवनी से प्राप्त होगा ।

हमारे सस्थान से बकिम-साहित्य का अधिकाश प्रामाणिक अनुवाद प्रकाशित हो चुका है—शेष हो रहा है । सौभाग्यवश उसके अनुवाद और सपादन मे देश-प्रख्यात, बगला के अनुवादकों मे अद्वितीय, वयोवृद्ध साहित्यकार पं० रूपनारायण पाण्डेय का सहयोग प्राप्त होने का हमें गौरव है ।

प्रस्तुत पुस्तक 'देवी चौधरानी' बकिम बाबू की अतिम रचनाओ मे अनन्यतम है । उन्ही के द्वारा इसका अग्रेजी मे भी अनुवाद होना, उनके बचे हुये अल्प जीवनकाल मे ही पाच संस्करण हो जाना तथा अग्रेजी, हिन्दी, मराठी और अब तो अन्य देशी-विदेशी भाषाओ मे भी अनेक रूपान्तरो के होने से इसकी लोक-प्रियता प्रकट है । बालिकाओ तथा स्त्री समाज के लिये अनुकरणीय, इस शिक्षाप्रद उपन्यास की नायिका है प्रफुल्ल (देवी चौधरानी) । पुस्तको की विद्या मे अनभ्यस्त, फिर भी ज्ञान की ज्योति; अति विनयशीला किन्तु स्वार्थी आडम्बरमय समाज के प्रहारो और मुसीबतों मे अचल-अविचल, परम सबला परन्तु अहकार-शून्य; पराक्रम के अवसर पर जगदम्बा और कर्तव्य तथा गुरुजनो एव पति के आगे आत्म-समर्पिता कुलबधू ! क्या कहे ! यदि देश, नही-नही, विश्व की ललनाएँ प्रफुल्ल और देवी चौधरानी का समन्वय बन पाती तो सारा मानव समाज मूर्तिमान स्वर्ग होता ।

अलावा, दस्युराज भवानी पाठक, साधारण प्यादा रगराज, दिवा, निशि, सरोज, नयन, ब्रजेश्वर, हरिबल्लभ सभी हमारे समाज मे नित्य, सर्वत्र 'साक्षात्' विराजमान है । खोना अथवा सीखना हमे बकिम बाबू द्वारा खीचे उनके चरित्रो से सुलभ है ।

नन्दकुमार अवस्थी

अध्यक्ष—श्री प्रभाकर साहित्यालोक, लखनऊ

प्रथम खण्ड

पहला परिच्छेद

ओ पी—अरी पीपी—प्रफुल्ल—अभागिन कहाँ है ?

अभी आती हूँ मा !

मा ने पुकारा—लड़की दौड कर पास आ गयी, बोली—क्यों मा ?

मा बोली—जा, घोष बाबू के घर से एक बैंगन माँग ला, जा !

प्रफुल्लमुखी—मै यह न कर सकूंगी । मागने मे मुझे शर्म आती है ।

मा—तो खायेगी क्या ? आज तो घर मे कुछ भी नही है ।

प्रफुल्ल—केवल भात खा लूंगी । रोज-रोज माग कर क्यो खाऊं ?

मा—ऐसा भाग्य लेकर क्यो आयी थी ? गरीब को मागने मे लाज क्या है ?

प्रफुल्ल ने कुछ उत्तर नही दिया । मा ने कहा—तो तू भात चढा दे, मैं कुछ तरकारी लाने के फेर मे जाती हूँ ।

प्रफ़ुल्ल ने मिन्नत की—मेरे सिर की कसम मा ! अब तुम मागने मत जाओ । घर मे चावल है, नमक है, खेत मे कच्चा मिरचा है, स्त्रियो के लिये इतना बहुत है ।

निदान प्रफुल्ल की माता राजी हो गयी, भात का अदहन लडकी चढा चुकी थी, मा चावल धोने चली ।

धोने के लिये चावल की टोकनी हाथ मे लेकर मा माथे पर हाथ रखकर बोली—चावल भी कहा है ? प्रफुल्ल को उसने दिखाया, आधी मुट्ठी चावल ही उसमे था, वह तो एक आदमी के आधा पेट भोजन को भी काफी न था ।

मा टोकनी हाथ में लिए बाहर जाने लगी। प्रफुल्ल ने पूछा—कहाँ जा रही हो ?

मा—चावल उधार माँग लाऊँ, नही तो निरा भात भी न मिल सकेगा।

प्रफुल्ल—हम दूसरों से कितना चावल उधार ले चुकी है, उसे चुका नही सकती, तुम अब चावल उधार मत लो मा।

मा—अभागी लडकी, खायेगी क्या ? घर में एक पैसा भी तो नही है।

प्रफुल्ल—उपवास करूँगी।

मा—उपवास करके कै दिन जीवित रहेगी ?

प्रफुल्ल—नही तो मर ही तो जाऊँगी।

मा—मेरे मरने के बाद जो रुचे करना। तू भूखों मरे यह मै इन आखो से देख न सकूँगी। जैसे भी हो सकेगा, भीख माँग कर भी तुझे अवश्य खिलाऊँगी।

प्रफुल्ल—भीख किस लिए माँगोगी ? एक दिन के उपवास से कोई मर नही जाता। आओ न, मा-बेटी मिलकर आज जनेऊ तैयार करे। कल बेचकर पैसे जुटा लेगी।

मा—सूत कहाँ है ?

प्रफुल्ल—क्यो, चरखा तो है।

मा—पिउनी कहाँ है ?

तब प्रफुल्लमुखी मुँह झुका रोने लगी। माँ हाथो मे टोकनी लिये फिर चावल उधार लाने चल पडी। तभी प्रफुल्ल ने माँ के हाथ से टोकनी छीन दूर फेक दी, बोली—क्यों माँगकर खाऊँ, मेरे पास सब कुछ है।

मा ने आखो के आसू पोछते हुये कहा—सब कुछ है तो बेटी किन्तु भाग्य मे बदा कहाँ है ?

प्रफुल्ल—भाग्य मे क्यों बदा नही है, मैने कौन सा अपराध किया है ससुर के यहाँ अपार अन्न-राशि रहते मैं खाने को मुहताज हूँ ?

मा—इस अभागिन के पेट से तू जन्मी, यही है तेरा अपराध और तेरा भाग्य। नही तो भला तेरा अन्न खाने वाला और है कौन ?

प्रफुल्ल—सुनो मा, मैंने आज मन मे निश्चय कर लिया है कि ससुर का अन्न यदि भाग्य से मिले तो खाऊँगी। नही तो अन्न न खाऊँगी। तुम माँग-

जांचकर जैसे हो लाकर खाओ। खाकर मुझे साथ लेकर चलो, ससुर के घर पहुँचा आओ।

मा—यह क्या कहती हो बेटी! कही ऐसा भी होता है?

प्रफुल्ल—क्यो नही होता, मा?

मा—बिना बुलाये बहू का ससुराल पहुँच जाना क्या ठीक है?

प्रफुल्ल—दूसरो के घर से माँग-मागकर खाना ठीक है और कोई बुलाने न आवे तो ससुराल जाना ठीक नही। क्यो?

मा—वे लोग तो कभी तुम्हारा नाम भी नही लेते।

प्रफुल्ल—भले ही न लेवे—इसमे मेरा अपमान नही है। जिनके ऊपर मेर भरण-पोषण का भार है, उनसे अन्न मागने मे तेरा अपमान नही है। अपना ही धन तो माँगकर खाऊँगी। इसमे शर्म की क्या बात है?

मा चुप होकर रोने लगी। प्रफुल्ल बोली—तुमको अकेली छोड़ कर जाने को जी नही चाहता किन्तु मेरा दुःख घटने से तुम्हे भी शान्ति मिलेगी, इस आशा से जाना ही चाहती हूँ।

मा बेटी मे बहुत सी बाते हुईं। मा मान गयी कि बेटी का कहना ही ठीक है। तब मा ने जो थोड़ा सा चावल था, उसे ही पकाया किन्तु प्रफुल्ल ने किसी तरह नही खाया। इसीलिए मा ने भी नही खाया। तब प्रफुल्ल बोली—तो अब समय नष्ट मत करो रास्ता लम्बा है।

मा ने कहा—आ, तेरे बाल बाँध दूँ।

प्रफुल्ल—नही, मा रहने दो।

मा ने भी सोचा, रहने ही दूँ। मेरी लडकी को सजाने की जरूरत नही?

प्रफुल्ल ने सोचा, साज शृंगार करके किसे लुभाने जायगी, छिः।

तभी दोनो मलिन वेश मे ही घर से निकल पडी।

दूसरा परिच्छेद

नरेन्द्र भूमि में भूतनाथ नामक एक गाव है। वही प्रफुल्लमुखी की ससुराल है। प्रफुल्ल की अवस्था चाहे जैसी हो, उसके ससुर हरवल्लभ बाबू बहुत बड़े आदमी है। उनकी बहुत बड़ी जमीदारी है, दुमजिला बैठका है, पूजा-मण्डप है,

पिछवाडे की बगिया, चहारदीवारी में घिरी हुई पोखरी,बाहर का आफिस, सभी कुछ था वह गाँव प्रफुल्लमुखी के मायके से छः कोस की दूरी पर है। छः कोस रास्ता पैदल चलकर मा बेटी भूखी प्यासी दिन के तीसरे पहर जमीदार की डयोढी में दाखिल हुई ।

भीतर पैर रखते समय प्रफुल्ल की मा के कदम भारी हो गये; प्रफुल्ल गरीब की लड़की थी। हरबल्लभ बाबू इसलिये उससे घृणा करते हो ऐसी कोई बात नही है। विवाह के तत्काल बाद ही जरा गडबडी हो गयी थी। गरीब देखकर भी हरबल्लभ ने विवाह मजूर किया था। लडकी परम सुन्दरी थी। वैसी लडकी दुर्लभ थी इसीलिए सम्बन्ध हो गया। इधर प्रफुल्ल की मा ने, कन्या बडे आदमी के घर जा रही है, इसी उत्साह मे सर्वस्व लुटा दिया। उस विवाह मे उनके पास जो कुछ था स्वाहा हो गया, तभी से दाने-दाने के लिये मुहताज हो गयी। किन्तु बदकिस्मती से उतनी साध से किये ब्याह का परिणाम भी सुखद न हुआ। सर्वस्व लुटाकर भी–उसका सर्वस्व था भी कितना, वह विधवा स्त्री सर्वांग पूरा न कर सकी। । यथाशक्ति ज्योनार, पक्वान्न आदि से बरातियों की आवभगत उसने की किन्तु कन्या पक्ष वाले अपने पडोसियो को केवल चिउड़ा दही परोसा। पड़ोसियो ने इसे अपना अपमान समझा। उन्होने कुछ नही खाया, और उठ कर चले गये। प्रफुल्ल की मा के साथ उनका बैर हो गया। प्रफुल्ल की माने उन्हे बहुत गालियाँ दी। पड़ोसियो ने उससे इसका बुरी तरह से बदला लिया।

बहू के रसोई करने के दिन हरबल्लभ ने समध्याने के पडोसियों को भी निमन्त्रित किया। उनमे से कोई भी नही गया–एक आदमी भेज कर उन लोगों ने कहला भेजा कि कुलटा जाति भ्रष्टा के साथ हरबल्लभ बाबू सम्बन्ध करना चाहे तो करे, बडे आदमियो को सब शोभा देता है, किन्तु हम लोग दुखी दरिद्र है, जाति-धर्म हमारा सर्वस्व है–हम लोग उस कुलकलंकिनी की कन्या की छुई रसोई का जल भी ग्रहण न करेंगे। उपस्थित सभा में यह बात फैल गयी। प्रफुल्ल की मा विधवा है, अकेली को लेकर घर में रहती है—अभी उम्र भी अधिक नही बीती है। यह बात कुछ असम्भव नही मालूम हुई। हरबल्लभ को याद आ गया कि विवाह की रात भी पडोसियों ने विवाह वाले मकान में भोजन नही किया था। पडोसी झूठः क्यों बोलेगे ? हरबल्लभ ने विश्वास कर

लिया। सभी ने विश्वास कर लिया। निमन्त्रित सब व्यक्तियों ने भोजन तो कर लिया—किन्तु किसी ने नववधू का स्पर्श किया हुआ भोजन नहीं खाया। दूसरे दिन हरबल्लभ ने बहू को उसकी मा के घर भेज दिया। उसी दिन से प्रफुल्ल और उसकी माता उनके लिए त्याज्य हो गयी। उस दिन से फिर कभी उनका समाचार उन्होने नही लिया, पुत्र को भी वहाँ जाने नही दिया। पुत्र का दूसरा विवाह करा दिया। प्रफुल्ल की मा ने दो एक बार कुछ सामग्री भेज दी थी, हरबल्लभ ने उसे लौटा दिया था। इसीलिये आज उस मकान में प्रवेश करते समय प्रफुल्ल की मा के पैर डगमगा रहे थे।

किन्तु वहा पहुँच जाने के बाद लौट जाना कठिन था। मा-बेटी साहस बटोर कर मकान के भीतर प्रवेश कर गयी। उस समय मालिक जनानखाने मे दोपहर को नीद मे सुख से पडे थे। गृहिणी अर्थात् प्रफुल्ल की सास, पैर पसारे पके बाल चुनवा रही थी। ऐसे ही समय वहाँ प्रफुल्ल और उसकी मा जा पहुँची। प्रफुल्ल ने मुँह पर आधा हाथ घूँघट खीच लिया। उसकी अवस्था इस समय अठारह वर्ष की हो गयी थी।

गृहिणी ने इन्हे देखकर पूछा—तुम लोग कौन हो जी!

प्रफुल्ल की मा ने लम्बी सास भरते हुये कहा—क्या कहकर परिचय दूं?

गृहिणी—क्यों, परिचय फिर कैसे दिया जाता है?

प्रफुल्ल की मा—हम लोग आपके रिश्तेदार हैं।

गृहिणी—रिश्तेदार? कौन से रिश्तेदार?

वहा तारा की मा नाम की एक नौकरानी काम करती थी। वह दो-एक बार प्रफुल्ल के मायके विवाह के बाद ही जा चुकी थी। बोली—पहचान गयी! मैं पहचान गयी। कौन! समधिनजी हैं? उस युग में परिचारिकाएं भी मालकिन का ही नाता जोडती थी।

गृहिणी—समधिन? अरे कौन सी समधिन?

तारा की माँ—दुर्गापुरवाली समधिन है जी, तुम्हारे बड़े लड़के की बड़ी सास।

गृहिणी समझ गयी। मुँह फूल गया। बोली—बैठो।

समधिन बैठ गयी—प्रफुल्ल खड़ी रही। गृहिणी ने पूछा—यह लड़की कौन है जी?

प्रफुल्ल की मा ने उत्तर दिया—तुम्हारी बडी बहू ।

उदास होकर गृहिणी थोड़ी देर तक चुप रही । बाद को बोली–तुम लोग कहाँ आयी थी ?

प्रफुल्ल की मा—तुम्हारे ही घर आयी है ।

गृहिणी—क्यो ?

प्रफुल्ल की मा—क्यों, मेरी लड़की को क्या अपनी ससुराल न आना चाहिये ?

गृहिणी—आना क्यों नहीं चाहिये ? सास-ससुर जब बुलावेगे तब आवेगी। भले आदमियो की लड़कियाँ क्या आप ही दौडी आती हैं ?

प्रफुल्ल की मा—सास-ससुर यदि सात जन्म तक नाम न ले ?

गृहिणी—यदि नाम ही न ले तो आने की क्या आवश्यकता ?

प्रफुल्ल की मा—उसको खिलाये कौन ? मै ठहरी विधवा अनाथिनी, तुम्हारे लड़के की बहू को मे कहाँ से खिलाऊँ ?

गृहिणी—यदि उसे खाना भी न दे सकती थी, तो गर्भ मे धारण ही क्यो किया था ?

प्रफुल्ल की मा—तुमने क्या खाने पहनने का हिसाब लगाकर ही पुत्र कोख मे धारण किया था ? फिर उसी समय लडके की स्त्री के भोजन-वस्त्र का भी हिसाब उसमें जोड नही सकी ?

गृहिणी—अरे बडी आफत है । यह औरत तो घर पर चढ कर लड़ने आयी है ?

प्रफुल्ल की मा—मै झगड़ा करने नही आयी हूँ । तुम्हारी बहू अकेली नही आ सकती थी, इसलिए अपने साथ यहाँ तक पहुँचाने आयी हूं । अब तुम्हारी बहू अपने घर पहुँच गयी है, मै जाती हूँ ।

यह कह कर प्रफुल्ल की मा मकान से बाहर हो गयी । अभागी उस समय तक निराहार ही थी ।

मा चली गयी, किन्तु प्रफुल्ल नहीं गयी । जिस तरह घूंघट कढा था, उसी तरह घूंघट काढ़े वह खड़ी रही !

सास ने कहा—तुम्हारी मा चली गयी; तुम भी जाओ ।

प्रफुल्ल नही गयी ।

गृहिणी—जाती क्यो नही ?

प्रफुल्ल हिली भी नही ।

गृहिणी—कैसी जलमुँही है ? क्या तुम्हारे साथ कोई आदमी करना पडेगा ?

इसके बाद प्रफुल्ल का घूँघट मरक गया; चाद सरीखा मुखडा, उस पर नेत्रों मे अविकल अश्रुधार बह रही थी । सास ने मन ही मन सोचा—अहा ! ऐसी चन्द्रमुखी बहू को लेकर गृहस्थी न चमका सकी । मन कुछ पिघल गया ।

प्रफुल्ल अति धीमे स्वर मे बोली—मैं जाने के लिए नही आई हूं मा ।

गृहिणी—तो मैं क्या करूँ बेटी ! क्या मेरी साध नही है कि तुम्हे लाकर अपनी गृहस्थी सजाऊँ ? किन्तु लोग तरह-तरह के प्रपंच करते हैं—जाति-च्युत करने की धमकी देते है, इसीलिए तुमको छोडना पड़ा है ।

प्रफुल्ल—मा, जाति-च्युत होने के भय से सन्तान को कौन त्याग देता है ? मैं क्या तुम्हारी सन्तान नही हूँ ?

सास का मन और द्रवित हो गया । बोली—क्या करूँ बेटी, जाति-भ्रष्ट होने का ही भय है ।

प्रफुल्ल पूर्ववत् अस्फुट स्वर मे बोली—भले ही मैं पतित होऊँ । कितनी ही शूद्र स्त्रियाँ तुम्हारे घर में दासी का काम कर रही है, मैं तुम्हारे घर में दासी का ही काम करूँ तो क्या आपत्ति होगी ?

गृहिणी फिर और बहस न कर सकी । बोली—हाँ, बेटी ! तू तो लक्ष्मी ही है, सौन्दर्य मे भी, शील स्वभाव मे भी । अच्छा जाती हूँ मालिक के पास । देखूं वह क्या कहते है । तुम यही बैठो । बेटी बैठो ।

प्रफुल्ल जम कर बैठ गयी । उमी समय एक किवाड की ओट से एक चौदह वर्ष की बालिका ने—वह भी सुन्दरी थी, मुँह पर घूँघट खिचा था—प्रफुल्ल को इशारे से बुलाया । प्रफुल्ल ने सोचा, भला यह कौन है ? उठकर वह बालिका के पास चली गयी ।

———

तीसरा परिच्छेद

जब मालकिन हाफती डोलती हाथ की पहुँची की कील खोंटती हरबल्लभ के शयनकक्ष में जा पहुँची, तो वे जाग चुके थे। हाथ मुँह धोकर पोछ रहे थे। यह देख मालिक का मन पिघलाने के लिये गृहिणी ने कहा—किसने नीद उचाट दी। मैं इतना मना करती हूँ, मगर कोई सुने तब तो।

मालिक ने मन ही मन कहा—नीद तोड़ने वाली आँधी तुम स्वय हो—आज शायद कोई जरूरी काम आ पडा है? प्रकट होकर बोले—नीद किमी ने उचाटी नही। अच्छी तरह सो चुका हूँ—बात क्या है?

गृहिणी ने मुँह को हँसी से भरा हुआ सा बनाकर कहा—आज एक विचित्र घटना घट गयी है, वही सुनाने आयी हू।

इस तरह भूमिका बाँधकर और जरा-जरा नथिया और पहुँची हिलाते हुये--क्योंकि उम्र अभी केवल पैंतालीस साल की ही थी गृहिणी ने प्रफुल्ल और उसकी मा के आने का वृतान्त शुरू से अन्त तक कह सुनाया। सुन्दर चाँद सरीखा मुख और मीठी बातो को याद कर प्रफुल्ल के पक्ष में बहुत जोर देकर उन्होने कहा। किंतु सारे मत्र-तत्र बेकार गये, मालिक का मुख काले बादलो की तरह मलिन हो गया। वे बोले—उसकी इतनी हिम्मत! वह बज्जात छोकरी मेरी ड्योडी मे घुस कैसे आयी! इसी क्षण झाड़ू से पीट कर उसे निकाल बाहर करो।

गृहिणी—छि छि यह कैसी बात कर रहे हो? हजार हो वह अपनी बहू है। फिर वह नीच की लड़की कैसे है? सिर्फ लोगो के कहने ही से क्या होता है।

गृहिणी हारने का पाँसा लेकर खेलने आयी है—इसी कारण इस तरह बदरंग फ़ेकने लगी। कोई नतीजा नही निकला। 'नीच छोकरी को झाड़ू से पीट कर निकाल दो,' यही फैसला अन्तिम था।

गृहिणी ने अन्त में रुष्ट होकर कहा—झाड़ू से पीटना हो, तो तुम ही पीटो; मै अब तुम्हारी घर-गृहस्थी की बातों मे न पडूँगी। यह कह गृहिणी भी क्रोध से फनफनाती बाहर आ गयी। जहाँ प्रफुल्ल को छोड़ गयी थी। वहाँ आकर उन्होने देखा कि प्रफुल्ल वहाँ नही है।

प्रफुल्ल कहाँ गयी यह पाठकों को याद होगा। दरवाजे की आड से घूंघट काढे एक चौदह साल की बहू ने उसको इशारे से बुलाया था। प्रफुल्ल वही चली गई थी। प्रफुल्ल के उस कमरे मे प्रवेश करते ही बालिका ने दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया था।

प्रफुल्ल ने पूछा—दरवाजा क्यों बन्द करती हो ?

लडकी—कोई आ न सके। तुम्हारे साथ दो-चार बाते करूँगी, बहन।

प्रफुल्ल—तुम्हारा क्या नाम है बहन ?

लडकी—मेरा नाम है, सागर।

प्रफुल्ल—तुम कौन हो बहन ?

सागर—बहन, मै तुम्हारी सौत हूँ।

प्रफुल्ल—तुम मुझे पहचानती हो क्या ?

सागर—मैंने किवाड की आड से सब कुछ सुन लिया है।

प्रफुल्ल—तो तुम ही गृहिणी हो।

सागर हटो क्या बात करती हो ? मेरे फूटे भाग्य मे वह सब कहाँ बदा है, न मेरे दाँत ही उतने बडे-बडे है, न मै उतनी काली कलूटी हू ?

प्रफुल्ल—यह क्या, किसके दाँत बडे-बडे है ?

सागर—क्यो ? जो असल मालकिन है ?

प्रफुल्ल—वह कौन है ?

सागर—जानती नही हो ? तुम जानो भी कैसे ? कभी तो यहाँ आयी नही, हम लोगो की एक और सौत है, जानती नही ?

प्रफुल्ल—मै तो अपने अलावा एक ही और व्याह की बात जानती हूँ। मैने सोचा कि वह तुमही हो।

सागर—नही। वह दूसरी है, मेरा ब्याह हुए तो तीन वर्ष हो गये।

प्रफुल्ल—वह शायद बहुत ही कुरूपा है ?

सागर—उसका रूप देख कर मुझे तो रुलाई आती है।

प्रफुल्ल—जान पड़ता है इसलिए तुमसे उन्होने ब्याह कर लिया।

सागर—नही नही, यह बात नही है। तुमको बताती हूँ, किसी और के सामने मत कहना। (सागर बहुत धीरे-धीरे बाते करने लगी) मेरे बाप के पास

बहुत धन है। मैं उनकी एक मात्र सन्तान हूँ। इसीलिये उस धन के लिए—

प्रफुल्ल—अच्छा मैं समझ गई और कहने की जरूरत नही है। परन्तु तुम इतनी सुन्दर वह साक्षात काली कैसे गृहस्थी पर अधिकार कर बैठी?

सागर—मैं पिता की एक मात्र सन्तान हूँ, मुझे ये बिदा नही करते और मेरे पिता से मेरे ससुर की अनबन रहती है। इस कारण मैं यहाँ कभी नही रहती। काम-काज मे कभी-कभी ये लोग बुला लाते है। यही दो-चार दिन हुए आयी हूँ। जल्दी ही चली जाऊंगी।

प्रफुल्ल ने देखा कि सागर अच्छी लडकी है, सौत होने पर भी उसे इससे ईर्षा नही होती।

प्रफुल्ल ने कहा—मुझे तुमने क्यो बुलाया?

सागर—तुम कुछ खाओगी?

प्रफुल्ल ने हँसकर कहा—क्यों, अभी नही खाऊँगी।

सागर—तुम्हारा मुँह सूखा हुआ है, तुम बहुत दूर का रास्ता चलकर आई हो, तुमको प्यास भी लगी है। किसी ने तुमको कुछ खाने को नहीं पूछा, इसीलिए मैने तुमको बुलाया है।

प्रफुल्ल ने उस समय तक कुछ भी खाया नही था। प्यास से ओठ व गला सूख रहे थे, किन्तु उसने उत्तर दिया–सास गयी है ससुर के पास उनकी अनुमति लेने। मेरे भाग्य मे क्या होने जा रहा है, इसे जाने बिना मैं यहाँ कुछ न खाऊँगी। झाडू-लात खाना होगा तो वही खाऊँगी, और कुछ न खाऊँगी।

सागर—नही—नही, इन लोगों की कोई चीज खाने की तुम्हे जरूरत नहीं है। मेरे पिता के घर की मिठाई है—अच्छी मिठाई है।

यह कह कर सागर कुछ मिठाइयाँ लाकर प्रफुल्ल के मुँह में ठूँसने लगी। निदान, प्रफुल्ल ने कुछ खा लिया! सागर ने ठंडा जल दिया, पीकर प्रफुल्ल का थका शरीर व मन शीतल हो गया। तब प्रफुल्ल बोली—मैं तो तृप्त हो गयी, किन्तु मेरी मा बिना खाये मर जायँगी।

सागर—तुम्हारी मा कहाँ चली गयी?

प्रफुल्ल—क्या जानूं? शायद रास्ते में खड़ी हों।

सागर—एक काम मैं करूँ?

प्रफुल्ल—क्या ?

सागर— ब्रह्मा दादी जी को उनके पास भेज दूँ ?

प्रफुल्ल—वे कौन है ?

सागर—रिश्ते मे बाबू की बुआ लगती है—इसी परिवार मे रहती है।

प्रफुल्ल—वे क्या करेंगी ?

सागर—तुम्हारी मा को खिलायेंगी, पिलायेंगी।

प्रफुल्ल—मा इस घर में कुछ भी न खायँगी।

सागर—हट, मैं क्या यह कह रही हूँ ? किसी और ब्राह्मण के घर मे।

प्रफुल्ल— जो हो सके करो, मा का कष्ट अब असह्य है।

सागर ने तीव्र गति से जाकर ब्रह्मा दादी को सब समझाकर कहा। ब्रह्मा दादी बोली—बेटी, ठीक ही कह रही हो ! गृहस्थ के घर कोई उपवास करके रह जाय यह तो बड़ा अनर्थ है।

ब्रह्मा प्रफुल्ल की मा की खोज में निकल पडी। सागर ने वापस आकर प्रफुल्ल को समाचार दिया। प्रफुल्ल ने कहा—अब बहन, जो किस्सा सुना रही थी, उसी को कह सुनाओ।

सागर—और क्या सुनाऊँ, बहन ? मै तो यहाँ रहती नहीं-रहने भी न पाऊँगी। मेरा भाग्य मिट्टी के बने आम की तरह है—आले पर रक्खी रहूँगी, देवता के भोग मे कभी न लगूँगी। तो, तुम आ गयी हो, जैसे हो सके यहाँ रहो; हममे से कोई उस काली उल्लू को देख नही सकती।

प्रफुल्ल—आयी तो रहने के ही विचार से हूँ। रह पाती तो सारा काम ही बन जाता।

सागर—तो देखो, यदि ससुर की अनुमति न भी हो, तो इसी क्षण चली मत जाना।

प्रफुल्ल—न जाऊँगी तो क्या करूँगी ? फिर कैसे रहूँगी ? रह सकती हूँ यदि—

सागर—यदि क्या ?

प्रफुल्ल—यदि तुम मेरा जन्म सार्थक करा सको।

सागर—कैसे होगा बहन ?

प्रफुल्ल जरा हँस पडी। क्षण भर मे ही वह हँसी-लुप्त हो गयी, आँखो से आँसू छलक पडे। बोली—बात समझ मे नही आयी, बहन।

सागर तब समझ गयी। जरा सोचकर गहरी साँस खीच कर बोली—तुम सन्ध्या के बाद इसी कोठरी में आकर बैठी रहना, दिन के समय तो दर्शन न होगे।

पाठक याद रक्खे, हम वर्तमान समय की बेपर्द फैशनेबिल स्त्रियों की बात नही लिख रहे है। हमारी कहानी एक सौ वर्ष पुराने जमाने की है। कोई चालीस वर्ष पहले भी पत्नियाँ कभी दिन के समय पति-दर्शन नही कर पाती थी।

प्रफुल्ल ने कहा—भाग्य का क्या फैसला है यह पहले जान लूं उसके बाद तुमसे भेंट करूँगी। भाग्य मे जो भी हो एक बार पति से भेंट करके ही जाऊँगी। वे क्या कहते है, यह सुनकर ही जाऊँगी।

यह कहकर निकल पड़ी। बाहर आकर उसने देखा, उसकी सास उसको ढूंढ़ रही है। प्रफुल्ल को देखकर उन्होने पूछा—तुम कहाँ थी बेटी ?

प्रफुल्ल—मकान की शोभा देख रही थी।

गृहिणी—अहा ! ये सब तुम्हारे ही है मेरी बच्ची—लेकिन मै क्या करूँ ? तुम्हारे ससुर किसी तरह भी राजी नही होते।

प्रफुल्ल के सिर पर मानो बज्र गिर पडा। वह सिर पकड कर बैठ गयी। सास को बडी दया आयी। मन ही मन उसने सोचा—एक बार फिर नथुनी हिलाकर उन्हे रिझाऊँगी। किन्तु इस बात को खोलकर उन्होने नही कहा-केवल बोली-आज अब कहाँ जाओगी ? आज यही रहो। कल सवेरे चली जाना।

प्रफुल्ल ने सिर ऊपर उठाकर कहा-आज मैं रह जाऊँगी-एक बात बाबू जी से पूछ लेना। मेरी मा चरखा कातकर खाती है। उससे एक आदमी का एक वक्त का खाना भी नही जुटता। उनसे पूछना कि मैं किस तरह क्या करके खाऊँगी। मैं कुजात ही सही, या चमारिन ही होऊँ, किन्तु उनकी पुत्रबधू हूँ। उनकी पुत्रबधू कौन सा काम करके दिन काटे ?

सास ने कहा-अवश्य कहूगी। उसके बाद प्रफुल्ल उठकर चली गयी।

———

चौथा परिच्छेद

सन्ध्या के बाद कमरे मे सागर और प्रफुल्ल दरवाजा बन्द कर परस्पर धीरे-धीरे बातचीत कर रही थी। उसी समय किसी ने आकर दरवाजे की जजीर खटखटाई। सागर ने पूछा—कौन है जी ?

मै हूँ। सागर ने प्रफुल्ल को हाथ से जरा कोच कर धीरे से कहा—बोलना मत वही काली उल्लू आ गई है।

प्रफुल्ल—हमारी सौत ?

सागर—हाँ वही है—चुप रहो।

बाहर से उसने फिर पुकारा—कौन है जी कमरे मे, बोलती नही क्यों ? सागर बहू की सी आवाज ही मुझे सुन पडी है न ?

सागर तुम कौन हो जी—आवाज से तो नाऊ की सी बहू लगती है।

उफ आफत आ जाय। मे क्या नाई की बहू की तरह हूँ ?

सागर—तो तुम कौन हो ?

तेरी सौत ! सौत ! मेरा नाम है नयान बहू।

इस बहू का नाम है नयनतारा, लोग उसे 'नयान बहू' पुकारते थे, सागर को 'सागर बहू' कहा करते थे।

सागर तब बनावटी झेंप दिखाकर बोली—कौन है बहनजी ! अरे राम, राम ! तुमको नाई की बहू कौन कह सकता है ? तुमतो साफ रग की हो !

नयान—आफत ही है। मैं क्या तुमसे भी ज्यादा काली हूँ ? सौत ऐसी ही डाइन होती है—तो भी यदि तू चौदह साल की न होती।

सागर—तो चौदह साल की होने से क्या होता है। तुम सत्रह वर्ष की हो—तुमसे मैं अधिक सुन्दर भी हूँ। उम्र भी नई है।

नयान—रूप यौवन लेकर बाप के घर बैठी-बैठी चाटती रह। मुझे मौत नही थी तुझसे इतनी बाते पूछने आयी हूँ।

सागर—कौन बाते जीजी !

नयान—तू दरवाजा खोलती है या नही ? साँझ से दरवाजा क्यों बन्द कर रखा है ?

सागर—मै, बहन, यहाँ बैठी दो-चार मिठाइयाँ खा रही हूँ, तुम भी तो इसी तरह खाती हो ?

नयान–तो खाओ, खाओ, खाओ (नयान स्वय मिठाई बहुत पसन्द करती थी) मै पूछ रही थी कि कोई एक और आगयी है क्या ?

सागर—कौन आ गया है, एक और पति ?

नयान - क्यो आफत ढा रही है। ऐसा भी कहीं होता है ?

सागर—ऐसा होने से क्या ही अच्छा होता—हम दोनो बटवारा कर लेती। तुम्हारे हिस्से मे नये को दे देती।

नयान—छि-छि ! ऐसी बाते क्या मुँह से भी निकालनी चाहिये ?

सागर—और मन मे ?

नयान—तू मुझे जो मन आवेगा वही बकेगी क्यों ?

सागर–तो बहन तुम क्या पूछती हो, समझाकर न कहने से मै कैसे उत्तर दूंगी।

नयान—पूछती हूँ, मालकिन की कोई एक दूसरी बहू आयी है ?

सागर—कौन बहू ?

नयान—वही चमारिन बहू ?

सागर—चमारिन ? कहाँ मैंने तो नही सुना।

नयान—सुना नही है कि हम लोगो की एक निचकोमी सौत है ?

सागर—अरे नही !

नयान—तू बड़ी दुष्ट है जानती नही, जो पहला ब्याह हुआ था।

सागर—वह तो ब्राह्मण की लडकी है।

नयान—हाँ, हाँ बडी बनी है ब्राह्मण की लडकी। ऐसा होता तो घर आकर गृहस्थी न चलाती ?

सागर—कल यदि तुमको बिदा कर मुझे लेकर गृहस्थी चलायी जाने लगे, तो क्या तुम नीच की लड़की हो जाओगी ?

नयान—तू मुझे गाली देगी क्यों, मुँहजली ?

सागर—तू किसी को गाली क्यो दे रही है, मुँहजली ?

नयान—जा मरजा–मैं बाबूजी से जाकर कहती हूँ कि तू बडे आदमी की लड़की होने के कारण जो जी में आता है वही मुझको कहती है ?

इतना कहकर नयनतारा उर्फ काली उल्लू गरजती-बरसती जाने लगी–तब सागर ने देखा कि सारा काम बिगड जायगा ! झट पुकारने लगी—नही जीजी, लौटो, लौटो । मुझसे कसूर हो गया, बहन लौटो, अभी दरवाजा खोले देती हूँ।

नयनतारा आग बबूला हो गयी थी—लौटने की इच्छा नही थी । किन्तु दरवाजा बन्द करके सागर कितनी मिठाइयां खा रही है, यह देखने की इच्छा थी । इसी से लौट पडी । कमरे मे घुसकर उसने देखा, मिठाई नही है– एक स्त्री और है ।

उसने पूछा—अरे यह कौन है ?

सागर—यह है प्रफुल्ल ।

नयान—प्रफुल्ल कौन ?

सागर—वही चमारिन बहू ।

नयान—इतनी सुन्दर ?

सागर—तुम से तो अधिक नही है ।

नयान—नही, देख मुझे जला मत ।

पाँचवाँ परिच्छेद

कोई पहर रात गये हरबल्लभ बाबू भोजन के लिये चौके में आये । मालकिन एक सुन्दर पंखिया ले थाली के पास बैठ कर डोलाने लगीं—चौके मे मक्खिया यद्यपि नही थी तो भी स्त्री धर्म की परम्परा तो निबाहनी ही थी । हाय ! आज कौन पतित नराधम इस परम पवित्र नारी धर्म को लुप्त कर रहे है ? आदर्श गृहिणी की पाच दासियाँ है–किन्तु पति की सेवा करने की योग्यता दासी मे कहा है ? जो पापी लोग इस पवित्र धर्म का लोप करने पर तुले हैं, हे आकाश ! उनके इसी अनाचारी मस्तिष्क के लिये क्या तुम्हारे पास बज्र नही है ?

मालिक ने भोजन करते-करते प्रश्न किया—वह नीच छोकरी क्या चली गयी ?

गृहिणी ने पंखा डोलाते नथिया हिलाते उत्तर दिया—इस समय वह कहाँ

जायगी ? रात के समय किसी अतिथि के भी आजाने पर तुम उसे निकाल बाहर तो नही करते-और मै इस लक्ष्मी जैसी बहू को रात मे ही निकाल दूं ।

मालिक—अतिथि हो, तो अतिथि गृह मे जाय । यहाँ उसका क्या काम ?

गृहिणी—मै नही निकाल सकती, मै कह चुकी । निकालना हो तो तुम्ही निकालो । इतनी सुन्दर बहू है, किन्तु तुम्हारी—

मालिक—नीचो के घर मे ऐसी सुन्दर अनेक दिखाई पडती है । अच्छा मै ही निकाले देता हूँ । जरा ब्रज को कोई बुला तो रे ।

ब्रज मालिक के लडके का नाम है । एक नौकरानी ब्रज को बुला लायी । व्रजेश्वर की अवस्था इक्कीस वर्ष की है,-अनुपम सौन्दर्य है उसका-पिता के पास नम्र भाव से आ खडा हुआ—कुछ बोलने का साहस उसमे नही था ।

देखकर हर वल्लभ बोले—बेटा, तुम्हारी तीन स्त्रियाँ है, याद है न ?

बृज चुप खडा रहा । प्रथम विवाह याद पड़ता है—वह एक जातिभ्रष्ट लडकी से हुआ था ।

बृज चुप ही रहा-बाप के सामने-बाईस वर्ष का होने पर भी लडका उस युग मे बोलता नही था-आजकल के लडके मूर्खों की तरह लबी स्पीच झाडत है ।

मालिक कहने लगे—वही नीच लडकी आज यहाँ आयी है जबर्दस्ती यहा रहना जाहती है मैंने तुम्हारी मासे कहा कि झाडूसे पीटकर उसे घर से निकाल दो । एक स्त्री किसी के शरीर पर हाथ कैसे लगा सकती है ? अत. यह तुम्हारा काम है । तुमको पूरा अधिकार है-और कोई भी उसे छू नही सकता । तुम आज ही रात उसे पीट कर निकाल देना, नहीं तो मुझे नीद न आवेगी ।

गृहिणी ने बृज से कहा—छि ! बेटा ! स्त्री के शरीर पर हाथ मत उठाना । उनकी अनुचित बात भी मान लोगे, मेरी क्या कुछ भी न सुनोगे । उसे मीठी बातो से बिदा कर देना ।

बृज ने बाप की आज्ञा सुनकर कहा—जैसी आज्ञा । मा से बोला-अच्छा ।

बृजेश्वर थोडी देर तक गुमसुम खडा रहा—उसी बीच गृहिणी ने मालिक से पूछा-तुम बहू को निकाल बाहर कर रहे हो बहू का भरण-पोषण कैसे होगा ?

मालिक—जो मन भावे वही करे—चोरी, डकैती, भीख माँगना, जो चाहे सो करें ।

गृहिणी ने बृजेश्वर से कहा—घर से निकालते समय बहू से यह बात कह देना। उसी ने पूछा था।

बृजेश्वर पिता के पास से चलकर बूह्मा दादी जी के उद्यान मे पहुँचा। उसने देखा, बृह्मा दादी माला जपने में तल्लीन है, और मच्छड उड़ा रही है। ब्रजेश्वर ने पुकारा दादी जी !

ब्रह्मा—क्यो बच्चा ?

बृज—आज कुछ नया समाचार सुना है ?

ब्रह्मा— क्या ? सागर ने मेरा चरखा तोड़ दिया है, वही ? तो अभी बच्ची ही तो है, तोड दिया होगा। चरखा कातने की बडी साध थी उसे…

ब्रज—यह बात नही, यह नही—मै कहता हूँ आज शायद…

ब्रह्मा—सागर को कुछ मत कहना। तुम लोग जीते रहो, मुझे बहुत चरखे मिल जायेगे। किन्तु अब इस बुढ़ापे मे…

बृज—सुनो मेरी बात मानोगी ?

बृह्मा--मै बुढ़िया हो गई, अब के दिन की हूँ। न जाने कब चल बसूं, इसका क्या ठिकाना। जनेऊ के जोडे बनाकर बाह्मणो को दे देने के सिवा और तो कुछ काम है नही, अच्छा छोडो भी यह बाते—

ब्रज-मेरी बात सुनो, नही तो जितने चरखे तुम्हारे पास है, सबको मै तोड दूंगा।

ब्रह्मा-तो क्या कह रहे हो ? चरखे के बारे मे नही ?

ब्रज-अरे नही, मेरी दो स्त्रियाँ है, जानती तो हो ही ?

ब्रह्मा-अरी अम्मा री अम्मा ! जैसी है वह नयान बहू वैसी ही है सागर बहू, मेरी तो हड्डी खा जाती है, कहानी सुनाओ, कहानी सुनाओ, कहानी सुनाओ, यही हर समय रट लगाये रहती है ! बच्चा, इतनी कहानियाँ कहाँ से पाऊ ?

ब्रज-कहानी की बात छोड़ो।

ब्रह्मा-तुमने तो कह दिया, छोड़ो; पर वे मानती कब है ? अन्त मे पेढकी पेढ़के की कहानी मैंने सुना दी, पेढकी पेढके की कहानी जानते हो ? कहती हूँ सुनो-एक घने बन मे १बड़े सेमर वृक्ष पर पेढ़का पेढ़की का एक जोड़ा रहता था।

ब्रज—सत्यनाश। दादी जी क्या कर रही हो ? इस समय कहानी नही ! मेरी बात सुनो।

ब्रह्मा—तो और क्या चाहते हो ? मै जानती हूँ, तुम कहानी सुनने के लिए आये हो, तुम्हे तो और कोई काम है नही ?

ब्रजेश्वर मनही मन कोसने लगा, न जाने कब इन बुढ़ियो को मौत आयेगी। प्रकट रूप से कहने लगा—मेरी दो ब्राह्मणी और एक कुजात स्त्री है। सुनता हूँ कि वह कुजात स्त्री आज आई है ?

ब्रह्मा—राम राम, कुजात क्या, वह तो ब्राह्मण की बेटी है।

ब्रह्मा—आई है ?

ब्रज—हाँ।

ब्रज—कहाँ है ? एक बार भेट न हो सकेगी ?

ब्रह्मा—हाँ ! मै उससे भेट कराकर तुम्हारे माँ बाप की आखों का काटा बनूँ। उससे अच्छा है कि पेढकी पेढ़के की कथा सुनो।

ब्रज—डरने की बात नही है, मा बाप ने मुझसे स्वय कहा है, उसको निकाल बाहर करो, तो बिना भेंट हुये उसे कैसे निकाल बाहर करूँगा ? तुम हो दादी जी, तुमसे उसका पता पूछने आया हूँ।

ब्रह्मा—बच्चा, मै बुढिया हो गई हूँ, कृष्ण नाम जपती हूं और आलू भात खाती हूं। कहानी सुनना चाहो तो सुना सकती हूँ। कुजात-ब्राह्मणी के प्रपच से मुझे कोई प्रयोजन नही है।

ब्रज—हाय ! इस बुढापे में तुम्हे कब डाकू आकर लूट लेंगे।

ब्रह्मा—ऐसी बात मुँह से मत निकाल, डाकुओ का भय बहुत है ? तो क्या तू उससे भेट करेगा ?

ब्रज—और नही तो क्या तुम्हारा माला जाप देखने आया हूँ ?

बृह्मा—तो सागर बहू के पास जा।

बृज—भला सौत कही सौत से पति की भेंट कराती है ?

बृह्मा—तू जा न, सागर ने तुझे बुलाया है। कमरे मे बैठी हुई है। ऐसी लड़की दुर्लभ है।

बृज—चरखा तोड़ दिया है इसीलिए ? नयान से कह दूंगा, वह भी एक चरखा तोड़ कर तुम्हारा प्रशसा-पत्र पा ले।

बृह्मा—हाँ, सागर और नयान मे। जा ! जा !

बृज—वहाँ जाने पर चमारिन से भेट होगी ?

बृह्मा—बुढिया की बात तू सुन तब न ! कहाँ की बला आगई, माला जपने नही पाई। अरे तेरे बाबा के तिरसठ ब्याह हुए थे, किन्तु चाहे चौदह वर्ष वाली हो या चौहत्तर वर्ष की ही हो, राम, राम। बात कहते शर्म आती है।

बृज—दादा जी को *अक्षय स्वर्ग* हो ! मै चौदह वर्ष वाली की खोज मे जा रहा हूँ। लौटने पर चौहत्तर वर्ष वाली को भी खोजूंगा।

बृह्मा—जा जा ! मेरा जाप चौपट कर दिया, मै नयनतारा से कह दूंगी तू बड़ा ही नटखट हो गया।

बृज—अच्छा कह देना। खुश होकर कुछ चबेना तुम्हे भेज देगी।

इतना कह बृजेश्वर सागर की खोज मे चल पडा।

छठा परिच्छेद

ससुराल आने पर सागर को दो कमरे मिले थे, एक था नीचे, दूसरा ऊपर। नीचे के कमरे मे बैठकर सागर पान लगाती थी, समवयस्क सहेलियो के साथ खेलती, इठलाती, गप्प या बातचीत करती। ऊपर के कमरे मे रात को सोती, दिन मे भी तन्द्रा आने पर उसी कमरे मे जाकर दरवाजा बन्द कर लेट रहती थी। ब्रजेश्वर ब्रह्मा दादी जी की कहानियो के चरखे से पिण्ड बचाकर ऊपर वाले कमरे मे गया।

वहाँ सागर नही थी, उसके बदले कोई दूसरी स्त्री बैठी थी। अनुमान से वह समझ गया कि यही है वह पहली स्त्री।

अजीब स्थिति थी। दोनों का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ था। स्त्री-पुरुष, एक दूसरे के अर्धांग, संसार मे घनिष्टतम सम्बन्ध। किन्तु कभी भेट तो हुई नहीं। क्या कहकर बात शुरू की जाय ? कौन पहले बोले।

जब एक दूसरी को खदेड़ने के लिये आयी है और दूसरी हर अपमान सहन

करने को तैयार होकर आयी है। प्रौढ पाठिकाओ से हमारा प्रश्न है कि यहाँ बात शुरू करना किस तरह उचित था ! पर यहाँ घबडाहट में उचित अनुचित का विवेक किसे था।

पहले दोनो में से एक ने भी बडी देर तक मुँह नही खोला। सहसा प्रफुल्ल बहुत थोडा मुस्कुराकर गले मे आँचल लपेट ब्रजेश्वर के चरणो मे झुककर प्रणाम कर बैठी।

ब्रजेश्वर बाप की तरह पत्थर नही है। उसने प्रणाम ग्रहण किया। घबडाकर प्रफुल्ल की बाहे पकड उसे पलंग पर बिठाया। उसे बैठाकर स्वय भी उसके निकट बैठ गया।

प्रफुल्ल के चेहरे पर जरा सा घूंघट खिचा था। उस जमाने की लडकियाँ आज कल की लडकियों की तरह निर्लज्ज नही थी। धिक्कार है इस युग को ! तो वह घूंघट प्रफुल्ल को पकड़कर बैठाते समय सरक गया। ब्रजेश्वर ने देखा कि प्रफुल्ल रो रही है। ब्रजेश्वर द्रवित हो गया। अनजाने या बरबस ही बृजेश्वर ने बिना सोचे विचारे जिस जगह डबडबाई हुई बडी-बडी आँखो की कोर से एक बूंद मोती जैसा आँसू ढरक आया था, उसी जगह, लिखने मे लज्जा आती है, बृजेश्वर ने हठात् कपोल चुम्बन कर लिया।

जिस समय बृजेश्वर इस घोर अश्लीलता में सराबोर हो रहे थे और ग्रथकार को भी उसी में लपेटने का कारण बन रहे थे. उस समय निर्बोध प्रफुल्ल मन ही मन सोच रही थी कि शायद इस मधुर चुम्बन जैसा पवित्र, पुण्यमय कर्म इस ससार मे किसी ने कभी किया ही नही; उसी समय दरवाजे पर किसी ने झाँक कर मानो देखा, कोई झाँककर हँस रहा था, किन्तु जिसका वह मुख था, उसके हाथों के कंकण की शायद जरा झनक हो गयी थी, जिसकी आहट बृजेश्वर के कान तक पहुँच गयी।

बृजेश्वर ने नजर उठाकर उधर देखा। उसने देखा, कोई बहुत सुन्दर मुख है एक दम काले घुंघराले केश गहनों से लदे हुये। उस जमाने की स्त्रियाँ माथे पर ऐसा ही गहना पहनती थीं—उसके ऊपर जरा घूंघट खिचा था—घूंघट के भीतर से दो कमल नयन और दो पतले अरुणाभ अधर मधुर-मधुर बिहँस रहे थे। ब्रजेश्वर जान गया कि वह सागर बहू है। सागर ने पति को दूर से ही एक चाभी और ताला दिखाया। सागर अभी लड़की ही थी। पति से वह खुलकर बातें नही करती

थी। बृज कुछ समझ न सके। किन्तु समझने मे बहुत देर नही लगी। सागर ने बाहर से किवाड़ खीच जंजीर चढा दी। ताले मे चाभी लगाकर उसे बन्द कर दिया और खिलखिलाती दौडती भाग गयी। बृजेश्वर ने ताला बन्द होने की आवाज सुनली। "यह क्या कर रही हो! क्या कर रही हो, सागर!" कह कर उसने पुकारा। सागर ने किसी तरह कुछ भी न सुना। छम-छम करती हुई दौड़कर सीधे बृह्मा दादी जी के बिस्तर पर लेट गयी।

बृह्मा दादी ने कहा—क्या है री सागर बहू! क्या बात है? यहाँ आकर क्यो लेटी है?

सागर—कुछ भी नही बोली।

बृह्मा—तुझे बृज ने बाहर निकाल दिया है क्या?

सागर—ऐसा न होता तो मैं तुम्हारे आश्रम मे क्यों भाग आती? आज तुम्हारे ही पास सोऊँगी।

बृह्मा—तो सो जा, सो जा। अभी वह तुझे फिर बुलायेगा, अभी। अहा तेरे दादा जी इसी तरह मुझे बारह महीने तीस दिन खदेड़ देते थे। फिर उसी क्षण मना ले जाते थे—मै और भी नखरे दिखाकर नही जाती थी! फिर भी स्त्री का मन ठहरा। मेरी बच्ची! मैं भी रुक नही सकती थी। एक दिन ऐसा हुआ कि—

सागर—दादी जी एक कहानी सुनाओ न—

ब्रह्मा—कौन कहानी सुनाऊँ, पेढका पेढकी की कथा सुनाऊँ? अकेली सुनेगी? अरे वह नयान बहू कहा है? उसे भी बुलाओ न, दोनो ही सुनेगी।

सागर—वह न जाने कहाँ है, मै इस समय उसे ढूंढ नही सकती। मै अकेली ही सुनूंगी, तुम कहो।

ब्रह्मा दादी जी ने तब सागर के पास लेट पेढके-पेढकी की कथा कहनी शुरू कर दी। सागर उसके शुरू होते ही सो गयी। ब्रह्मा दादी यह जान न पायी। आधा घण्टे तक वह कहानी सुनाती रही—बाद को जब वे जान गयी कि सागर को नींद आगई, तब दुखित चित्त से उन्होंने बीच ही में कहानी समाप्त करदी।

दूसरे दिन तडके ही सागर आई और कमरे के दरवाजे का ताला व जंजीर खोल गई। उसके बाद बिना किसी से कुछ कहे ब्रह्मा दादीजी का टूटा चरखा लेकर, उस निद्रामग्न बुढ़िया के कानों के पास घनर-घनर आवाज करने लगी।

ताला व कुण्डी खोलते समय कुछ खटपट हुई–उसे प्रफुल्ल और व्रजेश्वर ने सुन लिया। प्रफुल्ल बैठी हुई थी–उठ खड़ी हुई। बोली—सागर ने सिकड़ी खोली है, मै चल रही हूं। पत्नी रूप मे मुझे स्वीकार करो या न करो किन्तु दासी रूप मे सदा याद करना।

व्रज—अभी मत जाओ। मै एक बार बाबूजी से कह कर देखूँगा।

प्रफुल्ल—कहने से क्या उनका मन बदल जायगा ?

व्रज—भले ही न बदले, अपना काम मुझे करना पड़ेगा। अकारण ही तुमको त्याग कर क्या मै अधर्म मोल लूं !

प्रफुल्ल—तुमने मुझे त्याग नही दिया है—बल्कि ग्रहण किया है। मुझे एक दिन के लिये भी अपनी शैय्या पर स्थान दिया है–मेरे लिये वही सर्वस्व है। तुमसे मैं यही भीख माँग रही हूँ। मेरी जैसी अभागिनी के लिए बाप से झगड़ा मत करना। उससे मै सुखी न होऊँगी।

व्रज—कम से कम इतना तो मुझे करना ही पड़ेगा कि वे तुम्हारे भरण-पोषण का खर्च भेज दिया करे।

प्रफुल्ल—उन्होने मुझे त्याग दिया है। उनसे मैं भीख न लूंगी। तुम्हारे पास अपनी सम्पत्ति यदि कुछ हो तो तुमसे भीख भी ले लूंगी।

व्रज—मेरे पास निजी कुछ भी नही है। केवल मेरी यही अँगूठी है। इस समय इसी को ले जाओ। कम से कम इसके मूल्य से कुछ न कुछ दुःख कटेगा ही। उसके साथ मैं भी कुछ कमाने को चेष्टा करूँगा। जैसे भी होगा, मैं तुम्हारा भरण-पोषण करूँगा।

यह कहकर व्रजेश्वर ने अपनी अँगुली से बहुमूल्य हीरे की अँगूठी उतार कर प्रफुल्ल को दे दी। प्रफुल्ल ने अपनी अँगुली मे अँगूठी पहनते हुए कहा—यदि तुम मुझे भूल गये ?

व्रज—और सब कुछ भूल सकता हूँ किन्तु तुम्हे आजन्म न भूलूंगा।

प्रफुल्ल—मैं इस अँगूठी को कभी नही बेचूंगी। बिना खाये मर जाने पर भी उसे न बेचूंगी, जब कभी तुम मुझे पहचान न सकोगे, तब मैं तुमको यह अँगूठी दिखाऊँगी। इस पर लिखा क्या है ?

व्रज—मेरा नाम।

दोनों नेत्रों से अश्रु बरसते हुये एक दूसरे से विदा हुये। प्रफुल्ल नीचे पहुँची तो सागर और नयान से उसकी भेट हो गई। मुँहजली नयान ने पूछा—जीजी! कल रात को तुम कहां सोयी थी?

प्रफुल्ल—बहन, तीर्थ करके कोई उसकी बात अपने मुँह से नही करता।

नयान—क्या मतलब?

सागर—समझी नही? कल यह मुझे खदेड़ कर मेरे पलँग पर विष्णु जी की लक्ष्मी बनी हुई थी। उन्होने प्यार मे इसे एक अँगूठी दी है।

सागर ने नयान को, प्रफुल्ल के हाथ मे ब्रजेश्वर की अँगूठी दिखा दी। देखकर नयनतारा का शरीर आग की तरह जल उठा। वह बोली-जीजी, बाबू जी ने तुम्हारी बात का क्या उत्तर दिया है, सुन चुकी हो?

प्रफुल्ल को वह बात अब याद नही थी, वह व्रजेश्वर का आदर पा चुकी थी। प्रफुल्ल ने पूछा—किस बात का उत्तर?

नयान—तुमने पूछा था क्या करके खाओगी?

प्रफुल्ल—उसका उत्तर क्या मिला?

नयान—बाबू जीने कहा कि चोरी डकैती जो मन मे आवे करके खाओ।

"देखा जायगा।" कहकर प्रफुल्ल बिदा हो गयी।

प्रफुल्ल ने फिर किसी से कोई बात नही की, पिछवाड़े के दरवाजे से एक दम बाहर निकल गई। सागर उसके पीछे-पीछे गई। प्रफुल्ल ने उससे कहा—मैं बहन आज जा रही हूँ। इस मकान मे मैं अब न आऊँगी। तुम अपने मायके जाओगी तो वहाँ भेट होगी!

सागर—तुम मेरे पिता का मकान जानती हो—

प्रफुल्ल—जानती तो नही पर पता लगा लूँगी।

सागर—तुम मेरे पिता के घर आओगी?

प्रफुल्ल—इसमें लज्जा की क्या बात है?

सागर—तुम्हारी मा तुमसे भेट करने के लिए खड़ी हैं।

बगोचे के दरवाजे के पास सचमुच ही प्रफुल्ल की मा खड़ीं थीं। सागर ने दिखा दिया। प्रफुल्ल मा के पास चली गयी।

———

सातवाँ परिच्छेद

प्रफुल्ल और प्रफुल्ल की मा अपने घर लौट आई। प्रफुल्ल की मा को जाने आने से बहुत शारीरिक कष्ट हुआ था, मानसिक उससे भी अधिक हुआ। हर समय सब कुछ सहन नहीं होता। लौट आने पर प्रफुल्ल की मा को ज्वर आने लगा। पहले हल्का ज्वर था, किन्तु बगाली ब्राह्मण के घर की स्त्री, वह भी विधवा! उन्होने उस ज्वर को ज्वर ही न माना। इसके सिवा दोनो समय स्नान पूजन चलता रहा, मिल जाने पर आहार भी पहले की तरह होता रहा। पडोसी लोग दया कर कभी कुछ दे देते थे, उससे किसी तरह बेचारी गुजर करती। धीरे-धीरे ज्वर अधिक बढ गया। प्रफुल्ल की मा चारपाई मे लग गई। उस जमाने मे उन देहाती क्षेत्रों मे चिकित्सा का प्रचलन बहुत नही था, विधवाएँ यों भी औषधि नही खाती थी, प्रफुल्ल के पास ऐसा कोई आदमी भी नही था, जो किसी कविराज को बुला लाता। कविराज गाँवो मे नही के बराबर होते थे। ज्वर तीव्र हो चला, सन्निपात हो गया, अन्त में प्रफुल्ल की मा सभी दुखो से छुटकारा पा परलोक सिधार गई।

मुहल्ले के पाच आदमियो ने, जिन्होंने उसको झूठ, कलंकित किया था, आकर प्रफल्ल की मा का अन्तिम संस्कार किया। बगाली लोग ऐसे समय में शत्रुता नही मानते। बंगालियो मे यह बड़ा गुण है।

प्रफुल्ल अकेली रह गई। मुहल्ले के पाँच प्रमुख आदमियो ने आकर कहा—तुमको चतुर्थी का श्राद्ध करना पडेगा। प्रफुल्ल ने कहा—इच्छा पिण्डदान करने की है तो, किन्तु मै खर्च कहाँ से पाऊँगी? उन्ही आदमियो ने कहा—तुमको कुछ भी न करना पड़ेगा, हम लोग सब प्रबन्ध कर देंगे। किसी ने कुछ नकद दिया, किसी ने कुछ सामग्री दी, इस तरह से श्राद्ध और ब्राह्मण भोजन की तैयारी हुई। पड़ोसियों ने स्वयं ही सारी तैयारी कर डाली।

एक पड़ोसी ने कहा—एक बात सोच रहा हूँ। आखिर मा के श्राद्ध में तुम्हारे ससुर को निमन्त्रण देना चाहिए या नही।"

प्रफुल्ल ने पूछा—वहाँ कौन निमन्त्रण देने जायगा?

मुहल्ले के दो प्रतिष्ठित व्यक्ति आगे बढे। सभी कामों मे वे आगे आ जाते है उनका यही व्यसन था। प्रफुल्ल बोली—तुम्ही लोगों ने झूठा कलंक लगा हमे बदनाम कर उस घर से छुड़ा दिया है।

उन लोगो ने कहा, उस बात को अब मन मे मत रक्खो। हम लोग उस बात को सम्हाल देगे। तुम अब अनाथ बालिका हो, तुम्हारे साथ हम लोगो का कोई बैर भाव नही रहा।

प्रफुल्ल राजी हो गई। दो आदमी हरबल्लभ को निमन्त्रण देने गये। हरबल्लभ ने कहा—तुम लोगो ने ही तो समधिन को कुलटा कहकर समाज से अलग कर दिया था फिर तुम्ही लोग किस मुंह से यह स्वाग कर रहे हो!

आगन्तुकों ने कहा—यह तो आप जानते ही है, मुहल्ले के पडोसियों मे ऐसा मनमुटाव हो जाता है, किन्तु वह कोई महत्व की बात नही है।

हरबल्लभ दुनियादारी समझते थे, सोचने लगे, यह सब धोखा है। इन बेईमानो ने उस नीच छोकरी से रुपया खाया है। अच्छी बात है। लेकिन उस बज्जात छोकरी को रुपया कहाँ से मिला? हरबल्लभ ने निमन्त्रण पर ध्यान भी नही दिया। उनका मन प्रफुल्ल के प्रति और निष्ठुर और भी क्रुद्ध हो उठा।

ब्रजेश्वर ने सारी बाते सुन ली। सोचा, एक दिन छिपकर रात मे जाऊँगा और प्रफुल्ल को देखकर उसी रात वापस चला आऊँगा।

पड़ोसी लोग खिन्न होकर लौट आये। प्रफुल्ल ने यथोचित रीति से माता का श्राद्ध करके पडोसियो की सहायता से ब्राह्मण भोजन आदि किया। ब्रजेश्वर जाने का अवकाश ढूंढ़ने लगा।

———

आठवाँ परिच्छेद

नाइन फूलमणि का मकान प्रफुल्ल के मकान के पास ही था। माता के देहांत हो जाने के समय से ही प्रफुल्ल मकान में अकेली ही रहती थी। प्रफुल्ल सुन्दरी युवती थी। रात के समय अकेली रहने मे भय भी था, कलक लगने की भी आशंका थी। रात को सोते समय किसी स्त्री का पास रहना आवश्यक था। इसके लिए प्रफुल्ल ने फूलमणि से अनुरोध किया। फूलमणि विधवा थी। एक विधवा बहन के सिवा उसके परिवार मे और कोई भी नही था। वे दोनों बहने प्रफुल्ल की मा की भी हेली-मेली थीं, इसीलिए प्रफुल्ल ने फूलमणि से अनुरोध किया, और फूलमणि ने भी बिना हिचक स्वीकार कर लिया। अत जिस दिन प्रफुल्ल की मा मरी उसी दिन से फूलमणि प्रतिदिन सध्या के बाद प्रफुल्ल के घर आकर सो रहती है।

किन्तु फूलमणि का स्वभाव व चरित्र कैसा है इसकी विशेष जानकारी बालिका प्रफुल्ल को नही थी। फूलमणि प्रफुल्ल से दस वर्ष बड़ी थी। देखने सुनने में बुरी नहीं लगती थी, वेशभूषा साफ सुथरी व आकर्षक रखती थी, नीच जाति की लड़की वह भी बाल विधवा थी। अपना चरित्र गिरने से वह बचा न सकी थी। गाँव के जमींदार थे पराण चौधरी। उनका एक गुमाश्ता दुर्लभ चक्रवर्ती था जो कभी कभी आकर गाँव मे कचहरी लगाया करता था। लोग कहते थे कि फूलमणि दुर्लभ की विशेष कृपापात्री है अथवा दुर्लभ ही उसका कृपापात्र है। इन बातो को प्रफुल्ल ने बिलकुल ही न सुना हो ऐसी बात नही है, किन्तु क्या करे, और कोई अपना घरबार छोड़कर प्रफुल्ल के पास सोने को तैयार भी नहीं थी। इसके सिवा, प्रफुल्ल ने सोचा, वह भले ही खराब हो, मैं स्वयं बुरे रास्ते पर न चलूं तो मुझे कौन खराब बना सकता है?

इस कारण फूलमणि दो चार दिन आकर प्रफुल्ल के घर में सोती रही। श्राद्ध के दूसरे दिन फूलमणि जरा देर से आ रही थी। रास्ते में एक आम के पेड़ के नीचे एक झाड़ी मे वह घुस गयी। वहाँ पहले ही एक पुरुष खड़ा था। कहना आवश्यक है कि वही था दुर्लभचन्द्र चक्रवर्ती।

चक्रवर्ती जी ने ताम्बूल राग रंजित होठ वाली, चेहरा हँसी से खिला,

हुआ, लाल किनारी की साड़ी पहिने अभिसारिका को देख पूछा—क्या रंग है ?

फूलमणि—अच्छा ही है। तुम आधी रात को पालकी लेकर आना, दरवाजे पर खटखटाना। मै दरवाजा खोल दूँगी। किन्तु देखो, शोर न हो।

दुर्लभ—तुझे डर नही है ! वह तो शोर न करेगी ?

फूलमणि—उपाय करना पडेगा। मै चुपके से दरवाजा खोलूँगी, तुम धीरे-धीरे नीद मे ही उसका मुँह कपडे से कसकर बाँध देना। उसके बाद चिल्लाने की ताकत किसके बाप मे रहेगी ?

दुर्लभ—तो इह तरह जबर्दस्ती ले जाने पर वह कितने दिन ठहरेगी ?

फूलमणि—एकबार उठा ले जाने पर सब ठीक हो जायगा। जिसके तीन कुलो मे कोई नही है, जो दाने दाने को मुहताज है, उसे अच्छा खाना अच्छा कपड़ा मिलेगा। गहना, रुपया, सोहाग सभी पा जायेगी। फिर भी न रहेगी ? इसका भार मेरे ऊपर है। गहने रुपये मे मुझे हिस्सा जरूर मिलना चाहिये।

इस तरह बातचीत हो चुकने पर दुर्लभ अपने स्थान को चला गया। फूलमणि प्रफुल्ल के पास गयी। प्रफुल्ल इस भावी षडयन्त्र के बारे मे एकदम अनभिज्ञ थी। वह अपनी मा की बाते सोचते-सोचते सो गयी। मा के लिए जिस तरह रोज रोती थी उसी तरह रोयी। रोकर जैसे रोज सो जाती थी, उसी तरह सो गयी। आधी रात को दुलभ ने आकर खट से आवाज की। फूलमणि ने दरवाजा खोल दिया। दुर्लभ ने प्रफुल्ल का मुख बाँधकर जबरन उठाकर उसे पालकी पर चढ़ाया। कहार लोग चुपचाप उसे पराग बाबू जमीदार के बिहार मन्दिर की ओर ले चले। कहने की जरूरत नही कि फूलमणि उनके साथ-साथ चल दी।

इसके पन्द्रह मिनट बाद व्रजेश्वर उस सूने मे प्रफुल्ल की खोज मे आ पहुँचा। व्रजेश्वर सबसे छिपकर रात के समय भाग आया था। हाय कही कोई है भी !

प्रफुल्ल को लेकर कहार चुपचाप चल दिये, यह मै बता चुका हू। कहारों का स्वभाव ही है आवाज कसते हुये चलना। किन्तु इस बार कोई भी आवाज करने के लिए उन्हें पूरी मनाही थी। आवाज लगाने से शोर होगा। इसके सिवा एक बात और थी। ब्रह्मा दादी के मुँह से सुना जा चुका है कि यहाँ डाकुओ का

बहुत डर है । वास्तव में लुटेरों का ऐसा आतंक और कभी किसी प्रदेश में या नही इसमे सन्देह है । देश मे अराजकता थी । मुसलमानों की हुकूमत गिर गयी थी। अंग्रेजी राज्य की स्थापना भी दृढ नही हुई थी । अंग्रेजों की नीव जम रही थी। अभी कुछ ही वर्ष पहले सन् छिहत्तर के अकाल मे देश जर्जर हो चुका है । इसके अलावा देवीसिंह का चारो ओर दौर दौरा है। सात समुद्र पार, वेस्ट मिनिस्टर हाल मे खडे होकर लार्ड एडमण्ड बर्क ने उस देवीसिंह को अमरत्व दे दिया । पर्वतीय अग्नि शिखा के समान धुंआधार वक्तृता मे बर्क ने देवीसिंह के असह्य अत्यारो को दमन करने की स्पष्ट घोषणा की । उनकी वह वक्तृता बंगाल के घर घर मे प्रचारित हुयी । अनेक स्त्रियाँ वह घोषणा सुन मूर्च्छित हो गयी। आज सौ वर्ष बाद भी उस वक्तृता को पढने से शरीर सिहर उठता है । हृदय आन्दोलित हो जाता है । डाकुओ के भयानक अत्याचार से वरेन्द्र भूमि डूबी थी। चारो ओर क्षुधा का साम्राज्य है । अपने घरों मे भी लोग सुरक्षित नही हैं । जिसके पास खाने को नही है, वह दूसरों का छीन लेता है । इसलिए अब गाँव-गाँव में चोर डाकुओ के गिरोह है । किसमे शक्ति है कि उनका दमन करे ? गुडलैंड साहब रंगपुर के प्रथम कलक्टर थे । फौज उनके ही अधिकार मे थी । वे डाकुओं को पकडने के लिए सिपाहियो की टुकडियाँ भेजने लगे । सिपाही कुछ भी कर न सके ।

इन सब कारणों से दुर्लभ सशंकित था । वह बलपूर्वक पकडकर प्रफुल्ल को लिए जा रहा था । कही उसको डाकू लूट न ले । पालकी देखकर डाकुओ का आ जाना बहुत सम्भव है । इसी भय से सब कहार चुप थे । शोर गुल की आशंका से दूसरे आदमी भी नही थे । केवल दुर्लभ और फूलमणि दो ही थे । इस तरह डरते डरते वे चार कोस रास्ता पार कर गये ।

उसके बाद बडे-बडे जगल शुरू हुए । कहारो ने भयभीत हो देखा, दो मनुष्य सामने से आ रहे हैं । अंधेरी रात है, केवल नक्षत्रों के प्रकाश से मार्ग का अनुमान किया जा सकता है । इस कारण उनके शरीर भी अस्पष्ट से ही दिखाई पड़े । कहारों को प्रतीत हुआ साक्षात यमदूत की तरह दो व्यक्ति चले आ रहे हैं । एक कहार ने दूसरे से कहा—ये कौन हैं रे ! बड़े डरावने हैं । दूसरे ने कहा—रात को जगल मे घूम रहे हैं, भले आदमी कहाँ से होगे ?

तीसरा कहार बोला—दोनो जवान पट्ठे हैं रे ।

चौथा—हाथ मे लाठी तो नही दिखाई पडती ?

प्रथम—क्या कहते हो भाई ? अब तो आगे नही बढा जाता—इन डकैतो से तो प्राण बचाना असम्भव है......

चक्रवर्ती जी ने कहा—हाँ भाई बडी विपत्ति आ गयी है, आखिर जो भय था वही हुआ !

इतने ही मे जो दो आदमी चले आ रहे थे, उन्होंने रास्ते मे इन लोगो को आते देख पुकारा—कौन है, रे ?

कहार पालकी जमीन पर छोड, अरे बाप रे चिल्लाकर सर पर पैर रख घने जगल मे भाग गये। यह देख दुर्लभ चक्रवर्ती भी उन्ही के पीछे भागने लगे। तब फूलमणि भी "मुझे छोड़कर कहाँ जाते हो" कहती हुयी उनके पीछे-पीछे दौडने लगी ।

वह दो आदमी—जो इन दस आदमियो के भय के कारण थे साधारण पथिक मात्र थे। दो भोजपुरी जवान दिनाजपुर मे सरकारी नौकरी की कोशिश मे जा रहे थे। रात अधिक बीत जाने और प्रात:काल समीप देख तडके ही रास्ता चलने लगे थे। कहारों को भागते देख उन्होने खूब कहकहा लगाया उसके बाद अपनी राह चले गये। किन्तु कहारो, फूलमणि तथा चक्रवर्ती किसी ने पीछे घूमकर नही देखा।

प्रफुल्ल ने पालकी पर चढते ही अपने मुँह तथा हाथो का बन्धन खोल लिया था ! आधी रात के समय चिल्लाने से कुछ भी फल न होगा, यह सोच वह चिल्लायी नही। आवाज सुनकर भी भला डाकू के सामने कौन आता ? पहले भय के कारण कुछ बदहवास हो गई थी। किन्तु फिर उसने सोचा कि बिना साहस किये मुक्ति का कोई उपाय नही है। जब कहार पालकी छोडकर भागने लगे, तब प्रफुल्ल ने समझा मानो फिर कोई नयी विपत्ति आ गयी। धीरे धीरे उसने पालकी के किबाड खोले। गर्दन बाहर निकालकर उसने देखा, दो व्यक्ति चले जा रहे हैं। तब प्रफुल्ल ने धीरे से किवाड बन्द कर दिये। दराज से झाँककर प्रफुल्ल ने देखा दोनों आदमी आगे निकल गये। तब वह पालकी से उतर पड़ी—उसने देखा, कहीं कोई भी नही है।

प्रफुल्ल ने सोचा, जो लोग मुझे उठाये लिये जा रहे थे, वे अवश्य लौटेगे। इसलिये यदि रास्ते-रास्ते चलूंगी, तो फिर पकड़ी जा सकती हूँ। अच्छा तो यही

है कि इस समय जगल में छिप रहूँ। उसके बाद दिन निकलने पर जो हो सकेगा वही करूँगी।

यह सोच प्रफुल्ल जगल के भीतर घुस गई। सौभाग्यवश जिधर कंहार गये थे, उस तरफ वह नही गई। इसलिये किसी से उसकी भेट नही हुई। प्रफुल्ल जगल के भीतर चुपचाप खडी रही। थोड़ी ही देर में प्रभात हो गया।

प्रभात होने पर प्रफुल्ल बन मे इधर उधर भटकने लगी—रास्ते मे जाने का अभी भी साहस नही हो रहा था। उसने देखा, एक स्थान पर एक पगडडी सी बन के भीतर चली गई है। पगडडी देख उधर मनुष्यो की बस्ती का अनुमान कर प्रफुल्ल उसी रास्ते पर चलने लगी। घर लौटने मे भय था, घर से उसे डाकू फिर पकड कर ले जा सकते है। बाघ भालू खा जाये यह भी अच्छा होगा, किंतु डाकुओं के हाथ मे पडना तो अत्यन्त असह्य है।

पगडडी की लकीर पकड प्रफुल्ल बहुत दूर चली गयी। दिन एक पहर चढ आया तो भी कोई गाँव नही मिला। अन्त मे वह लकीर लुप्त हो गई। आगे रास्ता नही था। किन्तु उसने सोचा, जब यहाँ ईटे पडी है, तो निकट ही मनुष्यो की बस्ती अवश्य होगी।

चलने-चलते ईटो की संख्या बढने लगी। जगल आगे दुर्भेद्य हो गया। अन्त मे प्रफुल्ल ने देखा, सुनसान जगल के बीच एक विशाल अटारी का खडहर पडा हुआ है। प्रफुल्ल ने ईंटों के ढूह पर खडी होकर चारो तरफ निगाह दौड़ाई। उसने देखा उसकी दो-चार कोठरियाँ अब भी गिरी नही है। उसने सोचा, यहाँ मनुष्य भी हो सकते है। कोठरियों मे घुसकर देखने लगी। उसने देखा कि सभी के दरवाजे खुले है—किन्तु उनमें कोई है नही, यद्यपि किसी के रहने के चिह्न कुछ-कुछ हैं। क्षण भर बाद प्रफुल्ल को किसी बूढे आदमी के कराहने की सी आवाज सुनाई पडी। शब्द को लक्ष्य कर वह एक कोठरी मे घुस गयी। उसने देखा वहाँ एक बूढा लेटा कराह रहा है, उसका शरीर ठठरी था, ओठ सूखे हुए, आँखे धस गई थी, सास की गति तेज थी। प्रफुल्ल समझ गई कि इसका अत निकट है। प्रफल्ल उसकी शैया के पास जा खडी हुई।

बूढ़े ने प्राय: शुष्क कंठ से पूछा—"बेटी तुम कौन हो? तुम क्या कोई दैवी शक्ति हो, मृत्यु के समय मेरे उद्धार के लिए प्रकट हुई हो?

प्रफुल्ल ने कहा—मै हूँ अनाथिनी। रास्ता भटक कर यहाँ आ पहुँची हूँ। मालूम होता है कि तुम भी अनाथ हो। तुम्हारी कोई सेवा मै कर सकती हूँ-।

बूढा बोला—बहुत बडा उपकार इस समय तुम कर सकती हो। जय नन्द लाल की! इस समय मनुष्य का मुँह देखने को मिला। प्यास से प्राण निकल रहे है—जरा सा पानी दो!

प्रफुल्ल ने देखा, बूढे के कमरे मे जल का घडा है, घडे मे जल है। जल पीने का लोटा भी है। कवल कोई देने वाला नही है। प्रफुल्ल ने जल लाकर बूढे को पिलाया।

जल पीकर बूढा कुछ सुस्थिर हुआ। प्रफुल्ल इस जगल मे मरणासन्न बूढे को एकाकी अवस्था मे देख कुछ कोतूहल मे पड गई। किन्तु उस समय बूढा ज्यादा बात नही कर सकता था इस कारण प्रफुल्ल को उसका विशेष परिचय नही मिला। बूढे ने जो कुछ बताया, उसका साराश यह है —

वह वैष्णव है, उसका अपना कोई नही है, केवल एक वैष्णवी थी। वह वैष्णवी बूढे को मृत्यु के मुख मे देख उसकी सारी सामग्री लेकर भाग गई। बूढा वैष्णव है, अत उसका दाह सस्कार न होगा। उसकी इच्छा है कि उसका शव कब्र मे दफनाया जाय। तदनुसार वैष्णवी मकान के बाहरी आँगन मे एक कब्र खोद गई है। सम्भवत कुदाल खता उसी जगह पडे हुए है। बूढे ने प्रफुल्ल से यह प्रार्थना की—मै मर जाऊँ तो मुझे उठाकर उसी कब्र मे डाल कर ऊपर से मिट्टी से तोप देना।

प्रफुल्ल ने स्वीकार कर लिया। उसके बाद बूढा कहने लगा—मेरे पास कुछ धन है जो जमीन के नीचे गडा हुआ है। वैष्णवी को इसकी जानकारी न थी। वह जानती तो बिना उसे लिये नही भागती। वह धन किसीको न दे जाने से मेरे प्राण न निकल सकेगे। यदि किसी को बिना दिये मर जाऊँगा तो यक्ष बनकर रुपये के पास घूमता रहूँगा, मेरी सद्गति न होगी। मैने सोचा था कि वैष्णवी को वह धन दे जाऊँगा, किंतु वह तो भाग गई अब और किस मनुष्य से भेट होगी? इस कारण तुमको ही वह धन दिये जा रहा हू। मेरे बिस्तरे के नीचे एक चौकोर तख्ता बिछा हैं। उस तख्ते को उठा देना तो एक सुरग दिखाई पडेगी जिससे लगातार सीढियाँ नीचे को गई है। उन्ही सीढियो से नीचे उतर जाना, डरने की

कोई बात नही है। बत्ती लेकर जाना। नीचे जमीन के भीतर ऐसी ही एक कोठरी तुमको दिखाई पडेगी। उसी कोठरी के वायव्य कोण में ढूँढना, वही धन मिलेगा।

प्रफुल्ल बूढे की शुश्रूषा मे लगी रही। बूढे ने कहा—इस मकान में गोशाला है, गोशाला में गाये है—यदि गोशाला मे दूध दुह कर ला सको, तो थोडा सा लाकर मुझे दो—थोडा सा तुम भी पीलो।

प्रफुल्ल ने यही किया। दूध लाते समय उसने देखा कि कब्र खुदी हुई है—वहाँ कुदाल व फडुआ पडे हुए है।

तीसरे पहर बुड्ढे के प्राण पखेरू उड गये। प्रफुल्ल ने उसको उठाया—बूढा दुबला पतला था। इस कारण हल्का था। प्रफुल्ल के शरीर मे बल यथेष्ट था। प्रफुल्ल ने उसको उठाकर ऊपर से उसने मिट्टी से उसे तोप दिया। उसके बाद निकट के कुएँ मे नहाकर भीगे कपडे को आधा पहिन कर उसने धूप मे सुखाया। उसके बाद कुदाल खता लेकर बूढे के गडे धन की खोज मे चल पड़ी। बूढा उसको रुपया दे गया है इस कारण लेने मे कोई बाधा है, ऐसा विचार उसके मन मे नही आया। प्रफुल्ल दीन व दुखिया जो थी।

नवाँ परिच्छेद

बूढे को समाधि स्थल में गाड देने के पहले ही प्रफुल्ल ने उसका बिस्तर उठाकर जगल मे फेक दिया था। उसने देखा कि बिछौने के नीचे सचमुच ही एक चौकोर तख्ता पडा हुआ है। कोई तीन हाथ लम्बा चौडा वह होगा, फर्श पर जड दिया गया था। तब कुदाल लेकर उसने तख्ने को उभार दिया—नीचे एक अँधेरा गढा दिखाई पडा। जरा ध्यान से देखने पर ज्ञात हुआ कि नीचे उतरने की सीढियाँ उसमें बनी है।

जगल में लकडी की कमी नही थी। कुछ चिरी लकडी भी आँगन मे पडी थी। प्रफुल्ल उन्हे उठा लायी और उस गड्ढे मे डाल दिया। उसके बाद ढूँढने लगी। कही दियासलाई है या नही ? सोचा बूढा तमाखू जरूर ही पीता होगा।

सर वाल्टरराले के आविष्कार के बाद कौन बूढा तमाखू के बिना इस नश्वर नीरस भारस्वरूप जीवन को ढो सका है ? यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो जो इस अपूर्व बनस्पति से परहेज रखता हो तो शीघ्र इस नारकीय जीवन से मुक्ति मिलना अच्छा नही है, उसे और कुछ दिन जीकर इस समार की असह्य यत्रणा भोगना ही उचित है। ढूंढते-ढूंढते प्रफुल्ल चकमका पत्थर, पुआल, दियासलाई सब पा गयी। गोशाला से पुआल लाकर, चकमकी पत्थर की रगड से पुआल जलाकर सँकरी सीढियो से वह नीचे उतर गई। खता कुदाल पहले ही उसने नीचे गिरा दिये थे। उसने देखा कि वह एक सुन्दर कोठरी है। वायव्य कोण मे—पहले उसने वायव्य कोण को पहचाना। उसके बाद जिन लकडियों को उसने नीचे गिराया था, उन्हे पुआल की आग के सहारे जला दिया। ऊपर के रास्ते से धुँआ बाहर निकलने लगा। कोठरी मे उजाला हो गया। उसी कोने मे प्रफुल्ल खोदने लगी।

खोदते-खोदते कुदाल किसी चीज पर टकराई। प्रफुल्ल रोमाचित हो गई, समझ गई कि लोटा या घडा किसी पर खता टकराया है कहाँ से किसका धन यहाँ आ पहुँचा है, इसका विवरण आगे दिया जायगा।

बूढे का नाम है कृष्णगोविन्द दास। कृष्णगोविन्द कायस्थ का बेटा था। बडा स्वेच्छाचारी था वह, किन्तु प्रौढ होने पर एक सुन्दरी वैष्णवी के चक्कर मे फंसकर उसके तिलक और खँझडी के रागपर मुग्ध हो स्वय भी वैष्णव वेष धारण कर वृन्दाबन को चला गया। वृन्दाबन मे जाकर वह वैष्णवी भी कृष्णगोविद का जयदेव विरचित मधुर गान, श्रीमद्भागवत मे उसका पाडित्य और शरीर की सुन्दर गठन देख कर उसके चरणो मे सर्वस्व अर्पित कर पुण्य सचय करने मे प्रवृत्त हुई। उसकी यह भक्ति देख कृष्णगोविन्द वृन्दाबन छोड वैष्णवी को साथ ले फिर बगाल लौट आया। उस समय कृष्णगोविद निर्धन था। कामकाज की खोज मे मुर्शिदाबाद गया। वहाँ कृष्णगोविद को नौकरी मिल गई। किन्तु नवाब के महल मे जब खबर पहुँची कि उसकी वैष्णवी बहुत सुन्दरी है तो एक हबशी खोजा वैष्णवी को बेगम बनाने की नियत से उसके घर आनेजाने लगा। वैष्णवी लोभ में आकर राजी हो गई। इस मुसीबत से घबड़ाकर कृष्णगोविद वैष्णवी को लेकर भाग जाने की सोचने लगा। किन्तु कहाँ जाय। कृष्णगोविद

ने विचार किया इस अमूल्य रमणी धन को लेकर शहर में रहना खतरे से खाली नही है। कोई किसी दिन भी छीन लेगा। तब बाबा जी वैष्णवी को पद्मा नदी के उस पार ले गये और वहाँ एक निर्जन स्थान ढूंढने लगे। घूमते-घूमते इस भग्न खंडहर मे आ पहुँचे। उमने देखा कि लोगो की नजरो से अपनी सम्पदा को छिपा रखने योग्य यह स्थान है। यहाँ यमराज के अतरिक्त और किसी के आने की गति नही है। इसलिये वे दोनों वही रहने लगे। बाबा जी प्रति सप्ताह बाजार जाकर सौदा खरीद लाते थे। वैष्णवी को कही भी बाहर नही जाने देते थे।

एक दिन कृष्णगोविन्द नीचे की एक कोठरी का कोना खोद कर चूल्हा बना रहा था—खोदते-खोदते एक पुराने, बहुत ही पुराने युग की मुहर मिल गई। तब कृष्णगोविन्द ने वही और खोदा। गगरा भर मुहरे गडी मिली। इस धन के न मिलने से कृष्णगोविन्द के दिन कटने कठिन थे। अब चैन से जीवन बीतने लगा। किन्तु कृष्णगोविन्द को एक नयी पीडा सताने लगी। धन पाकर उसको सूझा कि ऐसे पुराने खण्डहरो के खोदने पर अनेक लोग अपार धन पा चुके हैं। कृष्णगोविन्द का दृढ विश्वास था कि यहाँ और भी धन अवश्य है। उसी समय से कृष्णगोविन्द प्रति दिन गडे हुए धन को खोजने लगा। ढूंढते ढूंढते कई सुरगे तथा चोर कोठरियाँ निकल पडी। कृष्णगोविन्द सनकी की तरह इन स्थानों मे ढूंढने लगा। किन्तु कही कुछ नही मिला। एक वर्ष इसी उधेड धुन मे पड़े रहकर कृष्णगोविन्द पस्त हो गया। कितु फिर भी, कभी-कभी चोर कोठरी में जाकर ढूंढने लगता। एक दिन उसने देखा कि एक अँधेरी कोठरी में एक कोने मे कोई चीज चमक रही है। दौड़ते हुए जाकर उसने उसे उठा लिया—देखा, वैसी ही मुहर है। चूहो ने वहाँ की मिट्टी खोद डाली थी, उसी मिट्टी के साथ यह निकल पडी थी।

कृष्णगोविन्द ने उस दिन कुछ नही किया। बाजार वाले दिन की प्रतीक्षा करने लगा। बाजार का दिन आने पर उसने वैष्णवी से कहा—आज मेरी तबीयत खराब है, तुम बाजार जाकर सौदा ले आओ। वैष्णवी सहर्ष बाजार चली गयी। कृष्णगोविन्द समझता था कि वैष्णवी को आज मौका मिला है। जल्दी नही लौटेगी। कृष्णगोविन्द उसी समय उस कोने को खोदने लगा। वहाँ बीस घडो मे गडा अपार धन उसे मिल गया।

प्राचीन काल मे उत्तरी बगाल मे नीलध्वज बशीय प्रबल पराक्रमी राजाग्रो का राज्य था। उग वग के ग्रन्तिम शासक थे–नीलाम्बर देव। नीलाम्बर की ग्रनेक राजधानियां थी—ग्रनेक नगरो मे उनके ग्रनेक राजभवन थे। यह भी एक राजभवन का खण्डहर है, यहाँ वर्ष मे दो-एक सप्ताह वे रहते थे। गौड प्रदेश के शासक ने एक दिन उत्तरी बगाल जीतने की इच्छा से नीलाम्बर के विरुद्ध ग्रपनी सेना भेजी–नीलाम्बर ने सोचा कि कौन जाने, यदि राजधानी पर ग्राक्रमगा कर पठान लोग इसे ग्रपने ग्रधिकार मे कर ले तो पूर्व पुरुषो की सचित ग्रपार धनराशि उनके हाथ पड जायगी। पहले से सतर्क हो जाना ग्रच्छा है। विचार कर नीलाम्बर युद्ध के पहले ही ग्रति गुप्त रीति से खजाने की धनराशि यहाँ ले ग्राये। ग्रपने ही हाथ से उसे जमीन मे गाड दिया। ग्रन्य कोई न जान सका कि धन कहाँ चला गया। युद्ध मे नीलाम्बर कैद हो गये। पठान सेनापति ने उनको गौड प्रदेश भेज दिया। उसके बाद फिर उनको ससार मे किसी ने कभी नही देखा। उनका ग्रत कैसे हुग्रा, कोई नही जानता। वे फिर कभी स्वदेश न लौट सके। तब से उनकी वह धन राशि इसी जगह गडी रह गयी। कृष्णगोविन्द को वही धन मिल गया। सोना, हीरा, मोती, प्रवाल ग्रसख्य थे–गिनना ग्रसम्भव था। ग्रनुमान करना कठिन था। कृष्णगोविन्द को बीसो घडे मिल गये।

कृष्णगोविन्द ने इन घडो को सावधानी से गाड रक्खा। एक दिन के लिए वैष्णवी को इस धन के बारे मे कुछ जानने नही दिया। कृष्णगोविन्द बडा कृपण था, इनसे एक भी मोहर निकालकर कभी खर्च नही करता था। इस धन को वह ग्रपने शरीर के रक्त के समान सेता था। उस एक हाँडी के रुपयो से ही कष्ट सहकर भी दिन बिताने लगा। वही धन ग्राज प्रफुल्ल पा गयी। घडो को ग्रच्छी तरह गाड प्रफुल्ल ग्राकर सो रही। सारे दिन परिश्रम के बाद पुग्राल के बिछौने पर प्रफुल्ल को शीघ्र ही निद्रा ग्रा गयी।

दसवाँ परिच्छेद

अब मै फूलमणि के सम्बन्ध मे कुछ कहना चाहता हूँ। नाइन फूलमणि हिरणी की तरह थी, जिसने चुन चुनकर द्रुतपद जीवो मे ही प्राण अर्पण किये थे। डाकुओ के भय से दुर्लभचन्द्र आगे-आगे भागने लगा, फूलमणि उसके पीछे दौडने लगी, किन्तु दुर्लभ ऐसे वेग से भाग रहा था कि वह पीछे दौड़ने वाली स्वप्नप्रेमिका के लिए अत्यन्त दुर्लभ हो गया। फूलमणि जोर से पुकारती—अजी! खडे रहो! मुझे छोडकर मत जाओ! दुर्लभचन्द्र और भी जोर से चिल्लता—अरे बाप रे! वह यही आ गया! कँटीली झाडियो को चीरता, नालो को छलाँगता, कीचड रौंदता दुर्लभ तेजी से भागा जारहा था—कुर्ते की बाहें फट गयी, एक पैर का नायगरा जूता न जाने कहाँ गिर गया, चादर एक कँटीली झाडी में फँसकर उसकी बहादुरी के चिह्नस्वरूप हवा मे फहरा रही है। उसे भागते देख फूलमणि सुन्दरी ने ललकारा—नीच, कमीना कही का—किसी औरत को फुसलाकर ले आने के बाद इसी तरह डाकुओ के हाथ मे सौप कर भागा जा रहा है—उल्लू? यह सुन दुर्लभचन्द्र ने सोचा मानो डाकुओं ने अवश्य ही उसको पकड़ लिया है। अतः कोई उत्तर दिये बिना ही वह और भी तेजी से दौडने लगा। फूलमणि ने फिर पुकारा—ओ नीच, मुँहजला, कलमुहाँ, अभागा, नालायक, पाजी। किन्तु दुर्लभ तबतक ओझल हो गया। अब फूलमणि ने चिल्लाना छोड़ रोना शुरू किया। रो-रोकर दुर्लभ के मा-बाप को कोसकर तरह-तरह की गालियाँ देने लगी किन्तु फूलमणि ने देखा कि डाकुओ मे से कोई भी नहीं आया। कुछ देर तक खडी सोचती रही—उसने रोना बद कर दिया। अन्त में जब उसने देखा कि डाकू भी नही आते हैं, दुर्लभचन्द्र भी गायब हो गया, तब जंगल से बाहर निकलने की राह ढूंढने लगी। उसकी जैसी चतुर स्त्री को रास्ता ढूंढ निकालने मे अधिक दिक्कत नही हुई। सहज ही मे बाहर निकल कर वह मुख्य सडक पर जा पहुँची। कही भी कोई नही है, यह देख वह अपने घर की तरफ चल पडी। दुर्लभ के ऊपर उस समय उसका क्रोध बहुत था।

बहुत दिन चढ आने पर फूलमणि अपने घर पहुची। वहाँ उसने देखा, उसकी बहन अलकमणि घर मे नही है, नहाने गयी है। फूलमणि किसी से कुछ

न कहकर किवाड़ भिड़ाकर सो रही। रात का सोयी नही थी- लेटते ही फूलमणि को नीद आ गयी।

उमकी बहन ने आकर उसे जगाया। पूछा—क्यों बहन ! तू अभी आ रही है ?

फूलमणि ने कहा—क्यों, मैं कहाँ गयी थी ?

अलकमणि— तू और कहा जायगी ? ब्राह्मण के घर सोने गयी थी, तो इतना दिन चढ आने पर भी नही आयी, इसीलिए पूछ रही हूँ।

फूलमणि—तेरी आँखे फूट गयी है तो क्या किया जाय ? तडके तेरे ही सामने आकर तो सो गयी थी। देखती तो है नही ?

अलकमणि—यह क्या कहती हो बहन, मैं सबेरे से तीन बार बाम्हन के घर जाकर तुझे ढूंढ आयी। वह भी तुझे नही देख पायी। उसको भी नही देखा। हाँ री, प्रफुल्ल आज कहा गयी है !

फूलमणि—(सिहरकर) चुप रह ? बहन, चुप ! मंह से वह बात मत निकाल।

अलकमणि—(डरकर) क्यो क्या हुआ है ?

फूलमणि—वह कहने योग्य बात नही है।

अलकमणि—क्यो ?

फूलमणि—हम ठहरे छोटे आदमी ! देवता ब्राह्मणो की बात उठाने की हमे जरूरत क्या है बहन ?

अलकमणि—यह क्या ? प्रफुल्ल ने क्या किया है ?

फूलमणि—प्रफुल्ल अब कहा है ?

अलकमणि—(फिर डर कर) क्या ? तू कहती क्या है ?

फूलमणि—(अति अस्फुट स्वर से) किसी के सामने मत कहना ! कल उसकी मा आकर उसे ले गयी।

अलकमणि—ऐ ?

अलकमणि का शरीर थर थर कापने लगा। फूलमणि तब उसे सारी कथा सुनाने लगी। बोली कि उसने कोई तीन पहर रात गये प्रफुल्ल के बिछौने पर कमरे में उसकी मा का बैठे हुए देखा। थोड़ी ही देर मे अन्धड़ सा

बहने लगा । उसके बाद फिर कोई कही भी नही दिखाई दिया । वह स्वय तो मूच्छित हो गयी, उसके दाँत जकड गये आदि आदि कथा का उपसहार करते हुए फूलमणि ने बहन को विशेष सावधान कर दिया कि ये सब बाते वह किसी के सामने न कहे । अपने सिर की कसम भी रखा दी । दीदी बोली—अरे नही, ऐसी बात कही किसी से कही जाती है ? किन्तु अलक दीदी उसी क्षण चावल धोने के बहाने टोकनी हाथ मे ले गाँव में घूमने निकल पडी । घर घर अल-कारिक भाषा मे वर्णन करके उसने सारा किस्सा सुना दिया । साथ ही सबको सावधान भी कर दिया कि देखो यह किसी और से न कहना । किन्तु वह समाचार विद्युत वेग से बात का बतगड़ बनता हुआ प्रफुल्ल की ससुराल भी पहुँच गया । बात का बतगड़ कैसा बना यह बाद में ज्ञात होगा ।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

प्रातःकाल उठकर प्रफुल्ल ने सोचा—अब क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? घने जंगल मे तो रहने का स्थान है नही । यहाँ अकेली कैसे रहूगी । जाऊं भी कहाँ ? डाकू फिर पकड ले जायेगे और जहाँ भी जाऊँ, इस धनराशि को कैसे ले जा पाऊँगी ? मजदूरो द्वारा ढोकर लेजाने से लोग जान जायेगे, चोर, डाकू लूट लेगे । मजूर भी कहां मिलेगे । कोई मिले भी तो उसका भरोसा ही क्या ? मुझे जान से मारकर धन ले जाने मे कितनी देर लगेगी ? इस धनराशि का लोभ कौन सवरण कर सकेगा ?

प्रफुल्ल बहुत दिन चढ आने तक बैठी सोचती रही । अन्त मे इस निष्कर्ष पर पहुँची कि भाग्य मे जो भी हो, यह दारिद्रयदु:ख अब मैं न सहूँगी, यही रहूँगी । दुर्गापुर और इस जगल मे मेरे लिये अन्तर ही क्या है ? वहा से भी मुझे डाकू पकडकर ले जा रहे थे, वहा भी अधिक से अधिक वही होगा ।

इस तरह मन को स्थिर कर प्रफुल्ल घरके काम काज मे लग गयी । उसने घर द्वार सब साफ किया । गाय को खिला-पिला कर उसकी सेवा की । अन्त मे कुछ खाना बनाने की फिक्र हुई । क्या पकाये ! हांडी, लकड़ी, चावल,

दाल—कुछ भी तो नही था। प्रफुल्ल एक मोहर लेकर बाजार की खोज मे निकल पडी। उसका साहस अलौकिक था। इसका परिचय पहले भी बहुत मिल चुका है।

जगल मे बाजार कहाँ ? प्रफुल्ल ने बाजार खोजने की ठान ली। जगल में एक पगडंडी है, यह पहले ही बताया जा चुका है। प्रफुल्ल उसी पगडंडी को पकड कर चल पडी।

चलते-चलते उस एकाकी गाँव में उसे एक ब्राह्मण के दर्शन हुये।

ब्राह्मण रामनामी ओढे तथा भाल पर तिलक लगाये था। सिर के केश मुडे थे। वह गौर वर्ण था, अत्यन्त भद्र, उम्र भी बहुत अधिक न थी। ब्राह्मण प्रफुल्ल को देखकर विस्मित हो गया। बोला— कहाँ जाओगी बेटी ?

प्रफुल्ल—बाजार जाऊँगी।

ब्रा०—इधर बाजार की राह कहाँ है ?

प्रफुल्ल—तब किधर है ?

ब्रा०—तुम कहाँ से आ रही हो ?

प्रफुल्ल—इसी जंगल से।

ब्रा०—इसी जंगल में ही तुम रहती हो ?

प्रफुल्ल—हाँ !

ब्रा०—तब भी तुम बाजार जाने का रास्ता नही पहचानती ?

प्रफुल्ल—मैं यहाँ नयी ही आई हूं।

ब्रा०—इस बन मे अपनी इच्छा से कोई नही आता। तुम कैसे आगयी ?

प्रफुल्ल—मुझे आप बाजार जाने का रास्ता बता दे।

ब्रा०—बाजार पहुँचने मे एक पहर समय रास्ते मे बीत जायगा। तुम अकेली न जा सकोगी। चोर-डाकुओं का भय है। तुम्हारे और कौन है ?

प्रफुल्ल—कोई नही !

बड़ी देर तक ब्राह्मण प्रफुल्ल के चेहरे को खड़ा ताकता रहा। मन ही मन उसने सोचा, यह बालिका तो सर्व सुलक्षण सम्पन्न है। अच्छा, देखा जाय कि मामला क्या है ? प्रकट रूप से बोला—तुम अकेली बाजार मत जाओ।

विपत्ति में फंस जाओगी। यहा मेरी एक दूकान है। यदि इच्छा हो तो वहां से तुम चावल-दाल आदि खरीद सकती हो।

प्रफुल्ल ने पूजा—यही मिल सकेगा? किंतु आपको तो ब्राह्मण पण्डित की तरह देख रही हूँ।

ब्रा०—ब्राह्मण पण्डित बहुत तरह के होते है। बेटी, तुम मेरे साथ चलो।

यह कहकर ब्राह्मण प्रफुल्ल को अपने साथ ले और भी घने जंगल में घुस गया। प्रफुल्ल कुछ-कुछ भयभीत होने लगी, किंतु इस बन मे भय कहां नही है? उसने देखा वहां एक कुटिया है—जिसमें ताला बन्द है। वहा कोई है नही। ब्राह्मण ने ताला खोला। प्रफुल्ल ने देखा—दूकान तो नही है, किंतु हाडी, कलसी, चावल दाल, नमक, तेल वहां यथेष्ट है। ब्राह्मण बोला-तुम जो कुछ अकेली ले जा सको, उठा ले जाओ।

प्रफुल्ल जो कुछ ले सकी, उसने ले लिया। उसने पूछा—दाम कितना देना पडेगा।

ब्रा०—एक आना।

प्र०—मेरे पास फटकर पैसा नही है।

ब्रा०—रुपया है? लाओ, भुनवा देता हूं।

प्र०—रुपया भी नही है।

ब्रा०—तो तुम क्या लेकर बाजार जा रही थीं?

प्र०—एक मोहर।

ब्रा०—देखूं।

प्रफुल्ल ने मोहर दिखा दी। ब्राह्मण ने उसे देखकर लौटा दिया। बोला-मोहर भुनाने भर को रुपये मेरे पास नही हैं। चलो, तम्हारे साथ तुम्हारे घर चलता हूं, तुम वही पैसे दे देना।

प्र०—मेरे घर मे भी पैसे नही है?

ब्रा०—वहाँ भी सभी मोहरे है? जाने दो। चलो, तुम्हारा घर देख आऊँ। जब तुम्हारे पास पैसे हो जायें तब मुझे देदेना, या मै जाकर ले आऊँगा।

वहा भी सभी मोहरें हैं, यह बात प्रफुल्ल के कानों को अच्छी नहीं लगी। प्रफुल्ल ने सोचा-यह चतुर ब्राह्मण समझ गया है कि प्रफुल्ल के पास अनेक मोहरें

हैं। इसी लोभ से वह उसका मकान देख आना चाहता है। प्रफुल्ल ने जो भी सामान खरीदा था, उसे रख दिया, बोली–मुझे बाजार जाना ही पड़ेगा। क्योंकि कपडे की भी जरूरत है।

ब्राह्मण हँस पड़ा। बोला—माँ! तुम सोच रही हो कि मैं तुम्हारा मकान पहचान जाऊँगा तो तुम्हारी मोहरे चुरा लूँगा। तुम क्या समझती हो कि बाजार जाने से ही मुझसे बच जाओगी? मै तुम्हारा साथ न छोड़ूँ तो कैसे छिपोगी?

सर्वनाश! प्रफुल्ल का शरीर सिहर उठा।

ब्रा० ने फिर कहा—किंतु मैं तुम्हारे साथ ठगी न करूँगा। मुझे तुम ब्रा० पण्डित या जो भी समझो, मैं हूँ डाकुओ का सरदार भवानी पाठक।

प्रफुल्ल पत्थर हो गयी! भवानी पाठक का नाम वह दुर्गापुर में सुन चुकी थी। भवानी पाठक एक विख्यात डाकू है। उसके आतक से सारा बगाल कांपता है। प्रफुल्ल के मुँह से बोल नही फूटा।

भवानी बोला—विश्वास न हो तो आओ प्रत्यक्ष देख लो।

यह कहकर भवानी ने कोठरी के भीतर से एक डफला निकाल उस पर दो-चार आघात किये। देखते-देखते यमराज की तरह दर्पयुक्त पचास साठ जवान लाठी बरछी हाथ मे लिये आ धमके। उन लोगो ने भवानी से प्रणाम करने के बाद, पूछा—क्या आज्ञा है?

भवानी– इस लडकी को तुम लोग अच्छी तरह पहचान लो। इसको मैं बेटी कह चुका हूँ। तुम लोग भी इसे बेटी कहना और बेटी की तरह समझना। कोई इसका अनिष्ट मत करना और न किसी अन्य को करने देना। अब तुम लोग जा सकते हो। आज्ञा पाते ही सभी डकैत अन्तर्द्धान हो गये।

प्रफुल्ल आश्चर्य से भौचक्क थी। प्रफुल्ल बडी स्थिर बुद्धि थी, समझ गई कि इसकी शरण में जाने के अतिरिक्त दूसरा चारा नही है। उसने कहा–चलिये आपको मैं अपना घर दिखा देती हूँ।

प्रफुल्ल ने चावल दाल आदि सामग्री फिर उठा ली। वह आगे आगे चली, भवानी पाठक उसके पीछे हो लिये। वे उसी भग्न खण्डहर मे जा पहुँचे। गठरी उतार प्रफुल्ल ने भवानी महाराज को एक फटा कुशासन बैठने के लिए दिया। बैरागी का एक फटा कुशासन वहीं पड़ा था।

बारहवाँ परिच्छेद

भवानी पाठनेक पूछा—इसी खण्डहर मे तुमको अशरफियाँ मिली है ?

प्रफुल्ल—जी हाँ !

भवानी—वे कितनी हैं ?

प्रफुल्ल—अपरिमित ।

भवानी—ठीक-ठीक बताओ कितनी है ? इधर उधर की बातें बनाने से मेरे आदमी आकर मकान खोदकर देखेंगे ।

प्रफुल्ल—बीस घड़े ।

भवागी—यह धन लेकर तुम क्या करोगी ?

प्रफुल्ल—अपने गांव घर ले जाऊँगी ?

भवानी—रख पाओगी ?

प्रफ़ुल्ल—आप सहायता करें तो रख सकूंगी ।

भवानी—इस बन पर मेरा पूरा अधिकार है, बन के बाहर मेरी शक्ति अधिक नही है । बन के बाहर चले जाने पर मैं इसकी रक्षा न कर सकूंगा

प्रफुल्ल—तो ऐसी स्थिति मे मे इसी बन मे यह धन लेकर रहूगी, आप रक्षा करेगे ?

भवानी—करूंगा, किन्तु तुम इतना धन लेकर क्या करोगी ?

प्रफुल्ल—लोग धन ऐश्वर्य लेकर क्या करते हैं ?

भवानी—उसका भोग करते है ।

प्रफुल्ल—मैं भी भोग करूंगी ।

भवानी पाठक ठहाका लगा कर हँस पडे । प्रफुल्ल घबड़ा सी गयी । यह देख भवानी बोले—बेटी ! नादान लड़की की तरह तुमने यह बात कही, इस लिए मैं हँस पड़ा । तुमने तो बताया था कि तुम्हारा कोई भी नही है तुम किसे लेकर यह ऐश्वर्य भोग करोगी ? अकेले कही ऐश्वर्य का उपभोग होता है ?

प्रफुल्ल ने सिर झुका लिया । भवानी कहने लगे—सुनो जिनके पास ऐश्वर्य होता है उनमे से कोई तो उसका भोग करता है, कोई पुण्य सचय करता है, कोई नरक का रास्ता साफ बनाता है । भोग करने का तुम्हारे पास साधन नहीं है ।

क्योकि तुम्हारे कोई और नही है । तुम पुण्य सचित कर सकती हो अथवा नरक का पथ प्रशस्त कर सकती हो । तुम्हे कौन सा मार्ग अभीष्ट है ?

प्रफल्ल बहुत साहसी थी । बोली–ये सब बाते डाकुओ के सरदार जैसी तो नही है ।

भवानी—ठीक है । मै केवल डाकुओ का सरदार नहीं हूँ । तुम्हारे सामने इस समय मै डाकुओ का सरदार नही हूँ । तुम्हे मैं बेटी कह चुका हूँ इस कारण इस समय मै तुम्हारे लिए जो हितप्रद समझूँगा वही कहूगा । धन का भोग तुम कर नही सकती—क्योकि तुम्हारे कोई नही है किंतु इस धन के द्वारा तुम पाप अथवा पुण्य अपरिमित परिमाण में सचित कर सकती हो–किस राह पर चलना चाहती हो ?

प्रफुल्ल—यदि मै कह दूँ कि पाप ही करूँगी ?

भवानी—तो इसी समय मै अपने आदमियो द्वारा तुम्हारा धन तुम्हारे साथ देकर इस बन के बाहर निकाल दूँगा । इस बन मे ऐसे मेरे अनेक अनुचर है जो तुम्हारे धन के लोभ से तुम्हारे साथ पापाचरण करने को राजी हो जायेगे । इस कारण तुम्हारी वह मति होने पर मैं तुमको इसी क्षण यहाँ से विदा कर देने को बाध्य हूँ । यह बन मेरा ही है ।

प्रफुल्ल—आदमियो द्वारा मेरा धन आप मेरे साथ भेज देंगे तो इससे मेरी क्या हानि होगी ?

भवानी—उसे सुरक्षित रख सकोगी, तुम रूपवती हो, सम्भव है डाकुओ के हाथ से बच भी जाओ, किन्तु रूप यौवन के हाथ से न बच सकोगी । पाप की लालसा समाप्त होने से पहले ही यह धन समाप्त हो जायगा । धन कितना भी क्यो न हो खर्च करने से उसके समाप्त होने मे बहुत समय नही लगता । उसके बाद बेटी ? नरक का पथ साफ है । लिप्सा पैदा होने के बाद उसकी परितृप्ति का कोई उपाय नही है; नरक का यही स्पष्ट रास्ता है । पुण्य सचय करोगी, बोलो ?

प्रफुल्ल—बाबू जी ! मै हूँ एक गृहस्थ की लड़की, कभी पाप मे नही रही । मैं पाप के पथ मे क्यो जाऊँ ? मै बहुत ही दरिद्र हूँ–अन्न वस्त्र मिल जाना ही मेरे लिए बहुत है, मुझे धन की भूख नही है—दिन बीतने भर से ही प्रयोजन है । यह सारा धन आप ले लें–मेरे लिये कुछ ऐसी व्यवस्था कर दे कि निष्पाप

वृत्ति से एक मुट्ठी अन्न पाती रहूँ।

भवानी ने मन ही मन प्रफुल्ल की सराहना की। प्रकट रूप से बोले–धन तुम्हारा है। मै उसे नही लूँगा।

प्रफुल्ल आश्चर्य में पड गयी। उसका मनोभाव समझ भवानी बोले–तुम सोच रही हो कि यह डकैती करता है। दूसरों का धन छीनकर खाता है, फिर इस तरह का पाखण्ड क्यो रच रहा है? अभी इसकी सफाई देने की आवश्यकता नही है। किंतु तुम यदि पापाचरण मे लग जाओगी, तो उस दशा मे सम्भव है तुम्हारा यह धन मैं लूट लूँ। किन्तु अभी मैं यह धन न लूँगा, तुमसे फिर पूछता हूँ—यह धन लेकर तुम क्या करोगी?

प्रफुल्ल—देख रही हू कि आप बड़े ज्ञानी पुरुष है. आप मुझे शिक्षा दीजिये कि धन लेकर मै क्या करूं?

भवानी—तुमको सिखाने में पाँच-सात वर्ष लग जायेगे। यदि सीखना चाहो, तो मैं सिखा सकता हूँ, इन पाँच सात वर्षों मे तुम धन का स्पर्श मत करना, भरण-पोषण के लिए तुम्हे कोई कष्ट न होगा। खाने पहनने के लिए तुमको जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता होगी, उन्हे मैं तुम्हारे पास भेजता रहूँगा। किंतु मैं जो कुछ कहूगा, उसे बिना किसी आपत्ति के मान लेना पडेगा। बोलो, स्वीकार है?

प्रफुल्ल—मैं रहूँगी कहां?

भवानी—इसी जगह। इस खण्डहर की कुछ-कुछ मरम्मत करा दूँगा।

प्रफ़ुल्ल—इस जगह में अकेली ही रहूँगी?

भवानी—नही मैं दो स्त्रियों को भेज दूँगा, वे तुम्हारे पास रहेंगी? कोई भय मत करना। इस बन का स्वामी मैं हूँ, मेरे रहते तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं हो सकेगा।

प्रफुल्ल—आप मुझे किस तरह सिखायेंगे?

भवानी—तुम लिखना पढना जानती हो?

प्रफुल्ल—नही।

भवानी—तो पहले लिखना पढना सिखाऊँगा।

प्रफुल्ल तत्पर हो गयी और इस बन मे एक सहायक पाकर खुश भी हुई।

भवानी पाठक बिदा होकर उस टूटी फूटी अटारी के बाहर आये। वहाँ एक व्यक्ति उनकी प्रतीक्षा कर रहा था, उसका गठन भी बलिष्ट है, गलमुच्छें करीने से है। भवानी ने पूछा—रगराज ! यहा तुम कैसे ?

रगराज—आपकी तलाश मे था। आप यहाँ क्यों ?

भवानी—जिसकी खोज इतने दिनो से कर रहा था, उसे आज पा गया।

रंगराज—राजा ?

भवानी—रानी।

रगराज—राजा रानी खोजने की अब जरूरत नही रही। अग्रेज राजा हो रहे है, सुन रहा हूँ कि कलकत्ते मे हैस्टिन × नामक एक अंग्रेज ने अच्छे राज्य की नीव डाली है।

भवानी—मै उस तरह का राजा नही ढूँढता। मैं जिसको ढूंढता हूँ, उसको तो तुम जानते हो।

रंगराज—अब क्या आप पा गये है ?

भवानी—वह सामग्री मिलने वाली नही है, तैयार कर लेनी पडेगी। जगदीश्वर लोहा पैदा करते है, मनुष्य उससे तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्र बना लेता है। मुझे अच्छा इस्पात मिल गया है, अब लगातार पाँच सात वर्षों तक उसे गढना होगा। तेज बनाना होगा। देखो इस मकान मे मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा पुरुष न प्रवेश करने पावे, लड़की युवती और सुन्दरी है।

रंगराज -जैसी आज्ञा, सम्प्रति इजारादार के आदमियो ने रंजनपुर लूट लिया है। इसी कारण आपको ढूँढ रहा हूँ।

भवानी—चलो हम इजारादार की कचहरी लूटकर गाँव के लोगो में बाँट दे। गाव के लोग हमारे पक्ष मे रहेगे।

रंगराज—मालूम होता है ऐसा ही होगा।

———

× Warren Hastings

तेरहवाँ परिच्छेद

भवानी ने अपने कथनानुसार दो स्त्रियो को भेज दिया । एक बाजार हाट जाने के लिये और दूमरी प्रतिक्षण प्रफुल्ल के साथ रहने के लिये, दोनो दो तरह की है। जो बाजार जाने का काम करेगी, उसका नाम है गोबरा की मा। उम्र है कोई तिहत्तर साल की, रग काला है और कान की बहरी है, यदि कान से एक दम ही न सुनती तो कोई हानि न थी। किसी तरह इशारे से काम चल जाता । किन्तु यह विचित्र बात है कि कभी तो कोई बात धीरे से कहने पर भी सुन लेती है और कभी-कभी गला फाड़कर चिल्लाने पर भी उसे कुछ सुनाई ही नही पडता ! ऐसे मे प्राय. बडी गडबडी होती है जो उसके साथ रहने के लिये नियुक्त थी, वह बिलकुल भिन्न प्रकृति की थी । उम्र प्रफुल्ल से पाच सात वर्ष अधिक होगी । उसका रग गेहुँआ था—बरसात की कोमल पत्तियो की तरह उसका असीम सौन्दर्य छलकता सा प्रतीत होया था ।

दोनों एक साथ ही आयी थी —मानो पूर्णिमा अमावस्या का हाथ पकडे आयी हो । गोबरा की मा ने प्रफुल्ल को प्रणाम किया । प्रफुल्ल ने कहा–आओ तुम्हारा क्या नाम है ?

गोबरा की मा सुन न सका । दूसरी ने कहा—"यह कुछ बहरी है—इसे सभी गोबरा की मा कहती है ।"

प्रफुल्ल—क्यो गोबरा की मा तुम्हारे कितने लडके है ?

गोबरा की मा–अरी मा मैं लडने कहाँ गयी थी ? मैं तो घर ही में थी।

प्रफुल्ल—तुम कौन जाति हो ?

गोबरा की मा––जाने आने में मैं पक्की हूँ । जहाँ ही जाने को कहोगी वहा ही चली जाऊंगी ।

प्रफुल्ल––पूछती हूँ तुम कौन लोग हो ?

गोबरा की मा––तुमको और लोगों की क्या जरूरत है मा ? में अकेली ही तुम्हारा सब काम कर दूंगी । केवल दो एक काम न कर सकूंगी ।

प्रफुल्ल––क्या काम न कर सकोगी ?

गोबरा की मा के कान खुल गये। वह बोली—क्या न कर सकूंगी ? यही पानी भर कर न ला सकूंगी। मेरी बाहो मे बूत नही है और कपड़े लत्ते फीचना ये काम तुम ही कर लेना मा !

प्रफुल्ल—और सब तो कर सकोगी न ?

गोबरा की मा–चौका बरतन यह काम भी तुम्ही करती तो अच्छा होता।

प्रफुल्ल—यह भी न कर सकोगी तो तुम क्या करोगी ?

गोबरा की मा—और ऐसा कोई काम नही है। हाँ घर मे झाडू लगाना, लीपना-पोतना यह भी मैं नही कर सकती।

प्रफुल्ल—तो तुम क्या कर सकोगी ?

गो० की मा—और जो कुछ कहो जल उडेल दूंगी, अपना जूठा पत्तल फेक दूंगी और असल काम जो है वे सभो करूंगी–बाजार से सौदा सुलुफ ला दूंगी।

प्रफुल्ल—सौदे का हिसाब बता सकोगी ?

गो० की मा—तो मा मैं अब बुढिया हो चुकी, बहरी हूँ इतना कैसे कर सकती हू ? पैसा कौड़ी जो कुछ मुझे दोगी सब खर्च कर आऊँगी मुझसे यह न कहना कि मैने सब खर्च कर दिया।

प्रफुल्ल—तब तो तुम्हारी तरह गुणवती स्त्री मिलना कठिन है।

गो० की मा—मा, यह जो कुछ तुम कहती हो अपने ही गुण के सहारे कह रही हो।

प्रफुल्ल ने तब दूसरी स्त्री से पूछा—तुम्हारा नाम क्या है जी ?

नवागत सुन्दरी ने कहा—यह तो बहन मुझे नही मालूम।

प्रफुल्ल ने हंस कर कहा—क्या मा बाप तुम्हारा नाम नही रख गये थे ?

सुन्दरी बोली—शायद रखा था। किन्तु मैं ठीक नही जानती।

प्रफ़ुल्ल—यह कैसी बात है ?

सुन्दरी—होश सम्हालने के पहले से ही मैं मा-बाप से अलग हो गई थी। बचपन में मुझे लकड़सुंघे चुरा ले गये थे।

प्रफुल्ल—ओह ! यह बात है ! तो उन लोगों ने भी तो कोई नाम रक्खा होगा।

सुन्दरी—तरह-तरह के नाम।

प्रफुल्ल—कौन-कौन से ?

सुन्दरा —मु हजली, अभागी, कुलच्छनी, कलमु ही ।

इतनी देर मे गोबरा की मा फिर अपने कानो की शक्ति खो चुकी थी। किंतु सदा से अभ्यस्त इन गुणवाचक शब्दो मे उसकी श्रवण शक्ति एकाएक जाग उठी। वह चौककर बोली—मुझे जो मुंहजली कहे, वही खुद मुंहजली, जो मुझे कलमुँही कहे वही खुद कलमुँही। मुझे निकम्मी बाँझ कहने वाली आप ही है निकम्मी बांझ।

सुन्दरी—(हँसकर) मैंने निकम्मी नही कहा बहन।

गोबरा की मा—तूने मुझे निकम्मी क्यों कहा !—तू फिर कहेगी क्यो ?

प्रफुल्ल हँसकर बोली—तुमको नही—यह तो मुझे कह रही है।

तब लम्बी साँस लेकर गोबरा की मा ने कहा—हाय मेरे करम। मुझको नही कहा ? तो कहने दो मा, कहने दो तुम नाराज मत होना। इस ब्राह्मनी का मुंह बहुत ही कडवा है ! जाने दो बेटी ! उस पर क्रोध करना उचित नही है।

गोबरा की मा के मुख से इस तरह स्वपक्ष मे बीर रस और अन्य पक्ष के लिए शान्तरस का उपदेश सुनकर दोनो युवतियाँ प्रसन्न हुईं। प्रफुल्ल ने दूसरी स्त्री से पूछा—तुम ब्राह्मणी हो ? तो अभी तक बताया क्यो नही ? मैने प्रणाम नही किया। प्रफुल्ल ने हाथ जोडकर प्रणाम किया।

सुन्दरी स्त्री ने आशीर्वाद देते हुये कहा—मै ब्राह्मण की लडकी तो अवश्य ही हूं, ऐसा ही सुनती हूँ–किंतु मैं ब्राह्मणी नही हूँ।

प्रफुल्ल—यह कैसी बात ?

सुन्दरी—कोई ब्राह्मण नही मिला।

प्रफुल्ल—विवाह नहीं हुआ, यह क्यों ?

सुन्दरी—लकडसु घे क्या विवाह करने देते है ?

प्रफुल्ल—तुम बराबर लकडसुंघो के घर में ही रही हो ?

सुन्दरी—नही, वह एक राजा के हाथ मुझे बेच आया था।

प्रफुल्ल—राजा ने भी विवाह नही कर दिया ?

सुन्दरी—राजकुमार इच्छुक तो थे किंतु विवाह गान्धर्व रीति से ही हुआ।

प्रफुल्ल—वर भी स्वयं ही थे शायद ?

सुन्दरी—वह भी कितने दिनों के लिए, ठीक कह नही सकती।

प्रफुल्ल—उसके बाद ?

सुन्दरी—मौका देखकर मैं भाग निकली।

प्रफुल्ल—फिर क्या हुआ ?

सुन्दरी—पटरानी ने मुझे कुछ गहने दिए थे, गहने लेकर भाग गयी। इसीलिए डाकुओ के हाथ पड गई। उन डाकुओ के सरदार हैं यही भवानी ठाकुर। मेरा सारा हाल सुनकर उन्होंने मेरे गहने नही लिए। वरन् कुछ और दे दिए। अपने घर मे उन्होने मुझे आश्रय दिया। मै हूँ उनकी कन्या, वे है मेरे पिता। उन्होने ही एक तरह से मेरा कन्यादान दिया है।

प्रफुल्ल—एक तरह से क्या मतलब ?

सुन्दरी—सर्वस्व श्रीकृष्ण मे अर्पित कर दिया ?

प्रफुल्ल—सो कैसे ?

सुन्दरी—रूप, यौवन, प्राण सभी कुछ।

प्रफुल्ल—वे ही तुम्हारे पति है ?

सुन्दरी—हाँ ! क्योकि, जिनका मुझ पर पूर्ण अधिकार है, वे ही मेरे पति है।

प्रफुल्ल ने लम्बी साँस छोड़ते हुये कहा—मैं कह नही सकती। कभी तुमने पति को देखा नही ? इसीलिए कह रही हो—पति को देख लेने पर श्रीकृष्ण मे कभी तुम्हारा मन नही रमता।

नादान ब्रजेश्वर को इतनी बातों की जानकारी नही थी।

वह स्त्री बोली—श्रीकृष्ण मे सभी स्त्रियो का मन रम सकता है क्योकि उनका रूप अनन्त है, यौवन अनन्त है, ऐश्वर्य अनन्त है और गुण अनन्त है।

यह युवती भवानी ठाकुर की शिष्या है किंतु प्रफुल्ल है निरक्षर-वह उसको कुछ समझ न सकी, उत्तर भी न दे सकी। हिन्दू धर्म के निर्माता इसका उत्तर जानते थे। ईश्वर अनन्त है, यह मै जानता हूँ किंतु अनन्त का छोटे से हृद पिंजरे मे समा जाना सम्भव नही, जिसका अन्त है उसे ही उसमे रखा जा सकता है। इसलिये हिंदुओं के अन्तस्तल में अनन्त जगदीश्वर मूर्त रूप श्रीकृष्ण विद्यमान है। पति भी उनमें से आराध्य है। इसी कारण प्रेम के पवित्र बन्धन से पति

ईश्वर तक पहुँचने का प्रथम सोपान है। इसी हेतु हिन्दू स्त्री का आराध्य देवता एक मात्र पति ही है। अन्य सभी समाज हिन्दू समाज के सामने इस व्यवस्था मे निकृष्ट हैं।

प्रफुल्ल थी नासमझ बालिका, वह कुछ भी समझ न सकी। बोली—मै तो बहन, इतनी बातें समझ नही सकती। तुम्हारा नाम क्या है अभी तक तुमने नही बताया।

सुन्दरी ने कहा—भवानी ठाकुर ने मेरा नाम रखा है निशि! मैं दिवा की बहन निशि हू। दिवा को एक दिन बातचीत करने के लिए ले आऊँगी। किंतु मैं जो कह रही थी उसे सुनो। ईश्वर ही परम पति है। स्त्रियो के देवता पति ही है, श्रीकृष्ण सभी के देवता हैं। दो देवता क्यों बहन! दो ईश्वर कसे? इस छोटे से तन प्राण की छोटी सी भक्ति को दो भागों में बाट देने से वह रह ही कितनी जाती है?

प्रफुल्ल—हट! स्त्रियों की भक्ति का भी क्या कोई अन्त है?

निशि—स्त्रियो के प्रेम का अन्त नही है। भक्ति एक चीज है, प्रेम दूसरी चीज है!

प्रफुल्ल—मैं तो अभी तक यह भेद नही जान सकी। मेरी भक्ति व प्रेम दो न थे।

प्रफुल्ल की आखों से झर-झर आसू गिरने लये। निशि बोली—मैं समझ गयी बहन! तुम बहुत दुःख उठा चुकी हो।

तब निशि ने प्रफुल्ल के गले में बाहे डाल उसकी आंखें पोंछ दी। बोली—मै इतना नहीं जानती थी। अब निशि समझी कि ईश्वर भक्ति की पहली सीढ़ी है पतिभक्ति।

———

चौदहवाँ परिच्छेद

जिस रात दुर्लभ चक्रवर्ती प्रफुल्ल को उसकी माता के घर से उठा ले गया, दैवयोग से उसी रात ब्रजेश्वर प्रफुल्ल के निवास स्थान दुर्गापुर जा पहुँचे। ब्रजेश्वर का एक घोडा था, घुडसवारी मे ब्रजेश्वर दक्ष थे। जब घर के सब लोग सो गये तब ब्रजेश्वर छिपे तौर मे घोडे पर चढ अँधेरे मे ही दुर्गापुर को रवाना हो गये। जब प्रफुल्ल की कुटिया के सामने पहुँचे तब घर जनशून्य व अँधेरा पड़ा था। प्रफुल्ल को डाकू ले जा चुके थे। रात मे ब्रजेश्वर को पड़ोसी या मुहल्ले का कोई ऐसा व्यक्ति नही मिला जिससे वे कुछ पूछते।

प्रफुल्ल के वहाँ दिखाई न पडने पर ब्रजेश्वर ने समझा कि प्रफुल्ल अकेली न रह सकने के कारण शायद अपने किसी रिश्तेदार के घर चली गई है। ब्रजेश्वर देर तक प्रतीक्षा न कर सका। पिता के भय से रात रहते ही वह घर लौट गया। कुछ दिन बीत गये। हरवल्लभ के सारे घरेलू काम काज पूर्ववत् चलने लगे। सभी खाते-पीते घूमते-फिरते थे; घर गृहस्थी के काम काज करते रहते थे। केवल ब्रजेश्वर के दिन चैन से नही बीत रहे थे। सहसा कोई कुछ न समझ सका—कुछ भी जान न सका। सबसे पहले मा का ध्यान गया। मालकिन ने देखा कि लड़के की थाली मे कटोरी का दूध पड़ा रह जाता है, मछली का केवल गले का थोडा भाग खाकर शेष बच जाता है, 'खाना अच्छा नही लगता' कहकर ब्रज परोसी थाली खिसका कर चल देता। मा ने सोचा कि लडके को मन्दाग्नि हो गई है। पहले उन्होने जीरा नीबू आदि की व्यवस्था की, उसके बाद कविराज को बुलाने की चर्चा उठाई। ब्रज ने बात हँस कर उडा दी। मा की बात तो ब्रज ने हंस कर उड़ा दी किन्तु ब्रह्मा ठकुराइन की बात वह न उडा सका। एक दिन ब्रज को अकेला पाकर वह बुढिया पूछ बैठी—क्यो रे ब्रज ? तू अब नयान बहू की ओर क्यों नहीं देखता ?

ब्रज ने हँस कर कहा—उसका चेहरा तो यो ही अमावस्या की रात सा है इसके अतिरिक्त सदा आँधी पानी से युक्त रहता है—उसे देखने की साध बहुत नही रही।

ब्रह्मा—अच्छा मरने दे उसे ! अपना भाव भोगे ! हाँ, तू आजकल खाता क्यो नही।

व्रज—तुम ही तो रसोई पकाती हो ?

बूआ—मैं तो सदा से ऐसी ही रसोई बनाती हूं।

बृज—आजकल हाथ अधिक निपुण हो गया है।

बूआ—दूध भी क्या मै ही पकाती हूँ ? उसमे भी क्या पकाने का दोष है ?

बृज—गायों का दूध बिगड गया है।

बूआ—तू मुँह बाये दिन रात क्या सोचा करता है ?

बृज—यही कि तुमको कब गंगाजी मे प्रवाहित करूंगा ?

बूआ—अच्छा अच्छा। बहुत बात बनाना आ गया है। मुझे बनाने चला है। मुझे क्या ? मैं तो जानती हूँ कि अन्त में इसी नीम के नीचे तू मुझे गगा मे फेंक देगा—तुलसी जी का भी दर्शन करने न पाऊंगी। तो तू चाहे जो कुछ भी सोचता रहे—आखिर गंगा जी में मुझे पहुँचाने की चिन्ता में घुल-घुल कर इतना सूख क्यों गया है ?

बृज—यह क्या कोई साधारण चिन्ता की बात है ?

बूआ—कल नहाने जाने पर सीढियो पर बैठा तू क्या सोच रहा था ? आंखो से आंसू क्यों झर रहे थे ?

बृज—सोच रहा था कि स्नान करने पर तुरन्त ही तुम्हारी पकाई रसोई खानी पड़ेगी। उसी दुःख मे आंखों से आँसू झर रहे थे।

बूआ—सागर आकर रसोई बना देगी ? तब तो भर पेट खा सकेगा ?

बृज—वाह ! क्या कहना है ? सागर जीवन भर रसोई तो बनाती रही थी ! उसके खेलने की कोठरी मे तुम किसी दिन नही गयी, धूल की चड़चडी भाजी, कीचड़ की शोरवेदार तरकारी, ककड़ों का खट्टा, सालन किसी दिन खुद खाकर देखो, उसके बाद मुझसे खाने को कहना।

बूआ—अच्छा प्रफुल्ल आकर रसोई बना देगी ?

जिस तरह हाथ मे दीपक लिये रास्ते से कोई चला जाता है तो उसके प्रकाश से रास्ते के पास का अँधेरा कमरा एक बार हँस सा पडता है, फिर उसी क्षण अँधेरा हो जाता है, प्रफुल्ल का नाम सुनकर बृजेश्वर का चेहरा-उसी तरह खिलकर मुरझा गया। उदास हो बृज ने कहा—वह कुजात जो है।

ब्रह्मा—कौन कहता है ? सभी जानते हैं कि वह झूठी बात है। तुम्हारे बाप को केवल समाज का भय है किंतु लड़के की अपेक्षा समाज बड़ा नही है। कहो तो इस बात का प्रसग मे फिर उठाऊँ ?

ब्रज—नही मेरे कारण समाज मे बाबू जी का अपमान होगा—यह नहीं हो सकता ?

उस दिन फिर अधिक बातें नही हुईं। ब्रह्मा ठकुराइन भी पूरी बात समझ न सकी। यह बहुत आसान न था। प्रफुल्ल का रूप अतुलनीय था। एक तो सौंदर्य से ही उसने ब्रज के हृदय पर अधिकार जमा लिया था, दूसरे उसी दिन बृजेश्वर यह भी जान गया था कि प्रफुल्ल का अन्त.करण भी बाह्य सौन्दर्य सा ही शुभ्र व निर्मल वल्कि वह कुछ अधिक ही सुन्दर है—और भी सरस है। यदि प्रफुल्ल उसकी विवाहिता स्त्री—अपना अधिकार पाकर नयन तारा की भांति उसके निकट रहती, तो उसका यह उन्मादकर मोह—सुस्निग्ध स्नेह मे परिणत हो जाता, रूप के मोह का परदा हट जाता, गुणों का आदर सदा बना रहता। किंतु भाग्य का फेर। प्रफुल्ल बिजली की तरह एक बार कौंध कर चिरकाल के लिए अन्धकार में जा समायी, इसी कारण वह मोह हजारगुना बल पा गया। किंतु यह तो हुई सीधी बात। सर्वाधिक पीड़ा की बात तो यह हुई कि उस पर अतिशय दया का भाव आता रहा। उस स्वर्ण प्रतिमा को उसके अधिकार से वञ्चित कर, अपमानित कर, मिथ्या कलंक लगाकर चिरकाल के लिए बहिष्कृत कर देना पडा है। अब वह दाने-दाने को मुँहताज है ? सम्भवतः भोजन के अभाव में मर ही जायगी। जब उस प्रगाढ अनुराग के साथ इस गंभीर करुणा का सयोग हुआ—तब मात्रा पूर्ण हुई। व्रजेश्वर का हृदय प्रफुल्लमय हो रहा था—और किसी भी बस्तु के लिए उसमें जगह नही रह गई थी। वह बुढ़िया इतनी बात भी न समझ सकी।

कुछ दिनो के बाद फूलमणि नाइन द्वारा प्रचारित प्रफुल्ल के गायब हो जाने का समाचार हरवल्लभ के घर पहुँचा। कहानी सैकड़ों मुखों से नया कलेवर धारण करती गई। समाचार यहाँ इस रूप में पहुँचा कि प्रफुल्ल वात-श्लेष्म ज्वर से मर गई—मृत्यु के पहले उसकी दिवंगत माता दिखाई पड़ी थी। बृजेश्वर ने भी यह सब सुन लिया।

हरबल्लभ ने शुद्धि स्नान तो किया, किंतु श्राद्ध श्रादि का निषेध कर दिया। बोले——शूद्रा का श्राद्ध ब्राह्मण कैसे करेगा ? नयनतारा ने भी स्नान किया—केश पोछते हुए उसने कहा—एक पाप बह गया——दूसरे के लिए भी ऐसा ही एक नहान हो सके, तो जलन शान्त हो जाय। कुछ दिन श्रौर बीत गये। ब्रजेश्वर सूख कर चारपाई लग गये। रोग कोई उग्र स्वरूप का नही था, थोडा-थोडा ज्वर श्राजाता था, बस। किंतु ब्रज बराबर दुर्लब होते गये, चारपाई पर पडे रहते। वैद्य जी ने उसे देखा। श्रौषध उपचार से जरा भी लाभ नही हुश्रा। रोग बढता ही गया। श्रन्त मे ब्रजेश्वर के जीवन की श्राशा भी श्रनिश्चित हो गयी।

श्रसल बात ज्यादा दिन छिपी न रही, पहले ब्रह्मा दादी समझ गयी उसके बाद गृहिणी भी समझ गयी। सभी बाते स्त्रिॉं पहले समझ जाती है। गृहिणी समझ गयी, श्रत गृहस्वामी भी समझ गये; तब हरबल्लभ के वक्ष मे शूल सा विंध गया। रोते-रोते हरबल्लभ ने कहा—छि छि: यह मैने क्या कर डाला ! श्रपने पैरो पर श्राप ही कुल्हाडी मार ली। गृहिणी ने प्रतिज्ञा कर डाली——लडका न बचा तो मैं जहर खा लूॅगी। हरबल्लभ ने प्रतिज्ञा की—इस बार भगवान ब्रजेश्वर को बचाले तो फिर कभी उसकी इच्छा जाने बिना कोई काम न करूॅगा।

ब्रजेश्वर बच गये। धीरे-धीरे श्रारोग्य लाभ करने लगे। धीरे-धीरे चारपाई छोड़ दी। एक दिन हरबल्लभ पिता का वार्षिक श्राद्ध कर रहे थे, ब्रजेश्वर किसी कार्यवश वहॉं उपस्थित थे। उन्होंने सुना, श्राद्ध के श्रन्त मे पुरोहित ने यजमान से मत्र पढाया—

पिता स्वर्ग: पिता धर्म. पिताहि परमं तप.।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व देवता.॥

यह वचन ब्रजेश्वर ने कंठस्थ कर लिया। प्रफुल्ल के लिए जब बरबस रुलाई उमडने लगती तब श्रपने मन को शान्त करने के लिए वे कहते—

पिता स्वर्ग: पिताधर्म: पिताहि परमं तप:।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व देवता:॥

इस तरह ब्रजेश्वर प्रफुल्ल को भूलने का उद्योग करने लगे। प्रफुल्ल की मृत्यु

का कारण अपने ही पिता हैं, यह बात मन मे उठते ही बृजेश्वर वही मंत्र पढ़ने लगते—

पिता स्वर्ग: पिता धर्म:
पिताहि परम तप: ।

प्रफुल्ल चली गई, तो भी पिता के प्रति बृजेश्वर की भक्ति अचल बनी रही ।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

प्रफुल्ल की शिक्षा आरम्भ हुई । निशि ने पहले राजा के घर में, बाद को भवानी ठाकुर के पास रहकर लिखना-पढना सीखा था । उससे ही प्रफुल्ल ने अक्षर ज्ञान, हस्तलिपि, अंकगणित आदि सीखा । उसके बाद भवानी ठाकुर ने स्वय शिक्षक का आसन ग्रहण किया । सर्वपथम उन्होंने व्याकरण पढाना आरम्भ किया । दो-चार दिन ही पढाने के बाद गुरुजी आश्चर्यचकित हो गये । प्रफुल्ल की बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी, उसकी जिज्ञासा प्रबल थी—वह हर विषय जल्दी-जल्दी सीखने लगी । उसका परिश्रम देखकर निशि भी विस्मित हो जाती थी । प्रफुल्ल का रसोई पकाना, भोजन करना, सोना—सभी नाम मात्र को थे । उसका मन केवल, सु औ जस्, अस् औ शस् में लगा रहता । निशि समझ गयी कि प्रफुल्ल उस सारी वेदना को भूल जाने के लिए अनन्यचित्त हो कर विद्याध्ययन मे दत्तचित्त हो रही है । व्याकरण पर कुछ ही महीनों मे उसका पूर्ण अधिकार हो गया । उसके बाद प्रफुल्ल भट्टिकाव्य को, अगाध समुद्र की तरह तैर कर पार गयी । साथ ही साथ शब्दकोष पर भी उसने अधिकार जमा लिया । रघुवंश, कुमार, नैषध, शाकुन्तल आदि काव्य ग्रन्थों को सहज ही पढ डाला । तब आचार्य ने कुछ-कुछ सांख्य, वेदान्त और थोडा सा न्याय दर्शन की शिक्षा दी । इन सबको सक्षेप मे पढ़ाया । सब दर्शनों की पृष्ठ-भूमि समझाकर, उन्होने प्रफुल्ल को विस्तार से योगशास्त्र के अध्ययन मे लगा दिया और अन्त मे सभी ग्रन्थों मे श्रेष्ठ, श्रीमद्‌भागवद्‌गीता को पढ़ाया । पाच वर्षों मे शिक्षा पूर्ण हुई ।

शास्त्रज्ञान के अतिरिक्त प्रफुल्ल को अन्य प्रकार की शिक्षा देने में भी वे तत्पर हे। गोबरा की मा कुछ काम नही करती थी, केवल बाजार से सौदा ला देती थी, वह भी भवानी ठाकुर के कहने से। निशि भी विशेष सहायता नही करती थी, इस कारण प्रफुल्ल को सब काम स्वय करना पडता था। इसमें प्रफुल्ल को कोई कष्ट नहीं होता था—माता के घर भी सब काम अपने हाथों स्वय ही करती थी। प्रथम वर्ष में भवानी ठाकुर ने उसके आहार की व्यवस्था मे मोटिया चावल, सेधा नमक, घी और कच्चा केला रक्खा था और कुछ भी नही। निशि के लिए भी यही था। प्रफुल्ल को इससे भी कोई कष्ट नही हुआ, मा के घर सब दिन इतना भी नही जुरता था। परन्तु प्रफुल्ल ने भवानी ठाकुर की एक बात नही मानी। एकादशी के दिन वह जबरदस्ती मछली खाया करती थी। गोबरा की मा के बाजार से मछली न लाने पर प्रफुल्ल गढे, नाले, पोखरी, ताल, नहर से खुद कँटिया डालकर मछली पकड़ लाती थी। इस कारण गोबरा की मा बाद मे एकादशी को बाजार से मछली लाने मे आपत्ति नही करती थी।

दूसरे वर्ष भी निशि के भोजन की व्यवस्था पहले की तरह रही, किंतु प्रफुल्ल के लिए केवल नमक, मिर्चा, भात और एकादशी को मछली देने का नियम रक्खा गया। प्रफुल्ल ने इस पर कोई आपत्ति नही की।

तीसरे वर्ष निशि को आदेश दिया गया—तुम छेना, संदेश, घी, मक्खन, क्षीर, फलफूल, अन्न का व्यजन सब खूब खाओ, किंतु प्रफुल्ल को नमक, मिर्चा और भात ही मिलेगा। दोनों एक ही साथ बैठकर खाना। खाते समय निशि और प्रफल्ल दोनों बैठकर हँसती थीं। निशि स्वादिष्ट सामग्री विशेष नही खाती थी—गोबरा की मा को दे देती थी। इस परीक्षा मे भी प्रफुल्ल उत्तीर्ण हो गई। चौथे वर्ष प्रफुल्ल को उपयोगी खाद्य खाने का आदेश मिला। प्रफुल्ल ने वही खाया। पाँचवें वर्ष उसको इच्छानुसार भोजन करने का आदेश प्राप्त हुआ। प्रफुल्ल ने प्रथम वर्ष की तरह ही अपना क्रम रक्खा।

लेटने, बैठने, सोने के सम्बन्ध में भी इसी तरह अभ्यास करने के लिए भवानी ठाकुर ने शिष्या को आदेश किये। प्रथम वर्ष पहनने के लिए चार कपड़े दिये गये। द्वितीय वर्ष दो दिये गये। तृतीय वर्ष गरमी की ऋतु में एक मोटा कपड़ा दिया गया। जिसे शरीर पर ही सुखा-सुखाकर पहनना पड़ता था और

शीत काल के लिए एक ढकहिया मलमल का वस्त्र दिया गया, जिसे पहिनकर ही सुखा लेना पड़ता था। चौथे वर्ष गरमी मे पटुए का कपडा, जाड़े मे ढकहिया बूटेदार और शान्तिपुरी कपडा मिला। प्रफुल्ल इन सबको फाड छोटा बना कर पहना करती थी। पाँचवे वर्ष इच्छानुसार वेश रखने को कहा गया। प्रफुल्ल मोटा गाढ़ा कपडा ही पहनती रही। कभी-कभी उन्हे सज्जी से धोलेती थी।

शृंगार प्रसाधन के सम्बन्ध मे भी ऐसा ही नियन्त्रण रहा। प्रथम वर्ष तेल निषिद्ध रहा, रूखे बाल ही बाँधने पडते थे। द्वितीय वर्ष बालो को बांधना ही मना कर दिया गया। दिन रात रूखे बालो की लटे बिखरी रहती थी। तृतीय वर्ष भवानी ठाकुर के आदेशानुसार उसने सिर मुडवा लिया। चतुर्थ वर्ष नये-नये बाल निकल आये, भवानी ठाकुर ने आदेश दिया—केश सुगन्धित तेल से सर्वदा सवार कर रखना। पाँचवे वर्ष स्वेच्छाचार की आज्ञा मिली। प्रफुल्ल ने पाँचवे वर्ष बालो पर हाथ भी नही लगाया।

प्रथम वर्ष रुई की पोशक व गिरदे पर प्रफुल्ल सोती रही। द्वितीय वर्ष पुआल का तकिया और पुआल बिछा कर सोती थी। तृतीय वर्ष भूमि ही शय्या थी। चतुर्थ वर्ष कोमल दूध के फेन सदृश मखमली बिस्तर पर सोयी। पाँचवे वर्ष स्वेच्छाचरण का आदेश मिलने पर भी प्रफुल्ल जहा ही जगह मिल जाती थी वहाँ ही सो जाती थी।

प्रथम वर्ष तीन पहर तक सोती रहती थी। द्वितीय वर्ष दो पहर समय नीद मे बिताती। तृतीय वर्ष दो दिनो के अन्तर पर रात्रि जागरण चलने लगा। चतुर्थ वर्ष तन्द्रा के आते ही सो जाया करती थी। पाचवे वर्ष स्वेच्छाचार रहा किन्तु प्रफुल्ल रात मे जाग कर पढती और पोथी नकल करती थी।

प्रफूल्ल जल, वायु, धूप और अग्नि के सम्बन्ध मे भी शरीर को सहिष्णु बनाने लगी। भवानी ठाकुर ने प्रफुल्ल को एक और शिक्षा लेने का आदेश दिया, जिसको बताने मे लज्जा लग रही है। किन्तु न बताने से भी बात ही अधूरी रह जायगी। दूसरे वर्ष भवानी ठाकुर ने कहा—बेटी! कुछ कुश्ती भी सीखनी पड़ेगी।

प्रफुल्ल ने लज्जा से सिर झुका लिया। अन्त मे उसने कहा—महाराज और जो भी कहे मैं उसे सीखूंगी। यह काम में न कर सकूंगी।

भवानी -- इसके बिना काम न चलेगा।

प्रफुल्ल— यह क्या महाराज ! स्त्री कुश्ती सीख कर क्या करेगी ?

भवानी—इन्द्रियों को वश मे करने के लिए दुर्बल शरीर इन्द्रियों को नहीं जीत सकता। व्यायाम के बिना इन्द्रियजय नही होती।

प्रफुल्ल—तुमको कुश्ती कौन सिखायेगा ? किसी पुरुष से मैं कुश्ती सीख न सकूंगी।

भवानी—निशि सिखावेगी। निशि लडके चुराने वालों की लडकी है। वे लोग बलिष्ठ बालक-बालिकाओ के अतिरिक्त दूसरों को अपने दल में नहीं रखते।+ उनके सम्प्रदाय में रह कर निशि ने बाल्यकाल मे व्यायाम सीखा था। खूब सोच-विचार करके ही मैने निशि को तुम्हारे पास भेजा है।

प्रफुल्ल लगातार चार साल तक कुश्ती सीखती रही।

प्रथम वर्ष, भवानी ठाकुर किसी पुरुष को प्रफुल्ल के घर मे जाने नहीं देते थे या उसको मकान के बाहर किसी पुरुष से बातचीत नही करने देते थे। दूसरे वर्ष उन्होंने बातचीत की निषेधाज्ञा हटा ली। किन्तु उसके मकान मे किसी पुरुष का प्रवेश निषिद्ध था। बाद को, तीसरे वर्ष जब प्रफुल्ल ने सिर मुडवा लिया, तब भवानी ठाकुर अपने चुने-चुने शिष्यो को साथ लेकर प्रफुल्ल के पास जाते थे—प्रफुल्ल सिर मुडाये मुँह झुकाये बैठी उन लोगो के साथ बातचीत करती थी। चौथे वर्ष भवानी अपने अनुचरो मे से चुने-चुने लठैतो को लेकर आते थे। प्रफुल्ल को उनके साथ कुश्ती लडने को कहते थे। प्रफुल्ल उनके सामने उन लोगो के साथ कुश्ती लडती थी। पाँचवे वर्ष किसी तरह का निषेध नहीं रहा। आवश्यकतानुसार प्रफुल्ल पुरुषो के साथ बातचीत करती थी। आवश्यकता के बिना नही करती थी। जब प्रफुल्ल पुरुषों के साथ बातचीत करती थी, तब वह उन लोगो को अपना पुत्र समझ कर बातचीत करती थी।

इस प्रकार विभिन्न परीक्षा और अभ्यासों के द्वारा अतुल सम्पत्ति की अधिकारिणी प्रफुल्ल को भवानी ठाकुर ने योग्य पात्री बना देने का उद्योग किया। पाँच वर्षों मे सभी शिक्षाएँ समाप्त हो गयी।

+ यह बात Warren Hastings ने स्वय लिखी है।

एकादशी के दिन मछली खाने के सिवा एक और बात मे प्रफुल्ल भवानी ठाकुर के कहने मे नहीं आयी। उसने अपना परिचय कुछ भी नही दिया। भवानी ठाकुर पूछताछ करके भी कुछ जान न सके।

सोलहवाँ परिच्छेद

पाँच वर्षो मे शिक्षा समाप्त हो जाने पर भवानी ठाकुर ने प्रफुल्ल से कहा—पाच वर्ष पहले तुम्हारी शिक्षा प्रारम्भ हुई थी। आज वह समाप्त हो गई। अब तुम अपने अधिकार मे आया हुआ धन अपनी इच्छानुसार खर्च करो—मैं आपत्ति न करूंगा। मै तुमको केवल परामर्श दूंगा। इच्छा हो तो मान लेना। मैं अब तुम्हारा आहार न जुटाऊँगा। तुम खुद ही अपने निर्वाह का प्रबन्ध करना। तुम से कुछ बाते कहदूं। ये बाते अनेक बार कह चुका हूँ। एक बार फिर कह दूं। अब तुम किस राह का अनुसरण करोगी?

प्रफुल्ल बोली—मै कर्म करूंगी। मेरी तरह सिद्धहीन के लिए ज्ञान उपयुक्त नही है।

भवानी अच्छा, अच्छा, सुन कर मैं बहुत प्रसन्न हो गया। किन्तु आसक्ति छोड़कर कर्म करना। याद है न, भगवान् ने कहा है—

तस्मादसक्त. सतत कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुष. ॥+

अनासक्ति क्या है, इसे तुम जानती हो। इसका प्रथम गुण है इन्द्रिय संयम। इन पाच वर्षों तक मैने तुमको जो कुछ सिखाया है, अब उससे अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नही है। दूसरा गुण है निरहङ्कार भाव। निरहङ्कार के बिना धर्माचरण शक्य नही है। भगवान् ने ही कहा है—

प्रकृते. क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वश।
अहकारविमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥÷

इन्द्रियो द्वारा जो कार्य सम्पन्न होते है, 'उनको मैने किया है' यह समझना

+ गीता अ० ३ श्लोक १९

÷ गीता अ० ३ श्लोक २७

ही अहंकार है। जो भी काम करो, वह तुम्हारे गुणों से सम्पन्न हुआ है, यह विचार मत करना ! यह अहंभाव आजाने पर कर्म भी निष्कर्म हो जाते हैं। उसके बाद तीसरा गुण है कि सब कर्मों का फल श्रीकृष्ण-चरणों में अर्पण कर देना। भगवान् ने कहा है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय ? तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।@

अब तुम बताओ तो बेटी, अपनी यह धनराशि लेकर तुम क्या करोगी ?

प्रफुल्ल—जब मैंने अपने सभी कर्मों को श्रीकृष्ण मे अर्पण कर दिया, तब मैं अहना यह धन भी उन्ही श्रीकृष्ण के चरणों मे अर्पित कर देती हूँ।

भवानी—सब ?

प्रफुल्ल—हाँ ! सब।

भवानी—किन्तु ऐसा होने से कर्म अनासक्त न रहेगा। अपने आहार के लिये यदि तुमको सचेष्ट होना पडा तो उस दशा में आसक्ति उत्पन्न होगी ही। इसलिए या तो तुम्हे भिक्षावृति अपनानी पडेगी अथवा इसी धन से शरीर रक्षा करनी होगी। भिक्षा मे भी आसक्ति है, इस कारण इसी धन से तुम अपनी शरीर रक्षा करना। बाकी सब श्रीकृष्ण मे अर्पण कर दो। किन्तु श्रीकृष्ण पादपद्म मे यह धन कैसे पहुचेगा ?

प्रफुल्ल—मैं सीख चुकी हूँ। वे सर्वभूतों में स्थिति हैं, इस कारण सर्वभूतों के हित मे यह धन वितरण कर दूंगी।

भवानी—ठीक, ठीक, भगवान् ने स्वयं कहा है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्व च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।।
सर्वभूतस्थितं यो मा भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्त्तते ।।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन। सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमोमतः ।। ×

@ श्री मद्भगवत्गीता अ० ६ श्लोक २७

× श्री मद्भगवत्गीता ६ अ० ३०-३२

किन्तु सर्वभूतों में दान के लिये अनेक कष्ट व कठिन परिश्रम की आवश्यकता है। यह तुम झेल सकोगी।

प्रफुल्ल—इतने दिन तक मैंने क्या सीखा ?

भवानी—उस कष्ट की बात मैं नहीं कहता। कभी-कभी कुछ दूकानदारी करनी पडती है। कुछ साज शृंगार, कुछ भोग-विलास के ठाट-बाट की आवश्यकता पड़ेगी। उसमें बड़ी उलझन है। उसे तुम सह सकोगी ?

प्रफुल्ल—वह कैसा है !

भवानी—सुनो। मै तो डकैती करता हूँ, यह पहले ही बता चुका हूं।

प्रफुल्ल—मेरे पास श्रीकृष्ण का जो धन है, उसमे से कुछ आपके पास भी रहेगा। उस धन को लेकर आप धर्माचरण मे लग जाइये। दुष्कर्म छोड़ दीजिये।

भवानी—धन की मुझे भी कोई आवश्यकता नहीं है। मेरे पास धन है भी यथेष्ट। मे धन के लिए डकैती नही करता।

प्रफुल्ल—तो क्यों करते है !

भवानी—मैं राजकार्य चलाता हूँ।

प्रफुल्ल—डकैती कौन सा राज्यकार्य है ?

भवानी—जिसके हाथ में राजदंड है, वही है राजा।

प्रफुल्ल—राजदण्ड राजा के ही हाथ मे रहता है।

भवानी—इस देश मे राजा कोई नही है। मुसलमानों का पतन हो चुका है, सम्प्रति अंग्रेज आ रहे है–वे राज्य शासन करना जानते भी नही। मे दुष्टों का दमन करता हूँ, शिष्टों का पालन करता हूँ।

प्रफुल्ल—डकैती करके ?

भवानी—सुनो समझाकर कहता हूँ।

भवानी ठाकुर कहने लगे, प्रफुल्ल सुनने लगी।

भवानी ने ओजस्वी वाणी से धाराप्रवाह वक्तृता देकर देश की दुरवस्था का करुण वर्णन किया, जमीदारो के अमानुषिक अत्याचारो का वर्णन किया। कचहरी के कर्मचारी लोग कर्जदारो के घर-द्वार लूट लेते है, छिपाये हुए धन की तलाश मे मकानों को तोड़-फोड डालते है, फर्श खोद डालते हैं, मिल जाने पर १ के हजार वसूल कर ले जाते हैं, कुछ न मिलने पर मारते-पीटते है, बाध कर कैद कर लेते हैं,

जिन्दा जला देते है, कुल्हाडी से काट देते है, गांव के गांव फूंक देते है। सिंहासन से शालग्राम की मूर्ति फेंक देते हैं, बच्चों के पैर पकड कर पटक देते है, युवकों की छाती को लट्ठों से रौंद देते हैं। बूढों की आंखों में चीटियां डाल देते है, नाभि में पतंगे रख कर बांध देते हैं। युवतियों को कचहरी में ले जाकर सबके सामने नंगी कर देते हैं, उन्हें पीटते हैं, उनके स्तन काट डालते है, स्त्री जाति का जो सबसे बड़ा अपमान है, जो उसकी चरम विपत्ति है, सबके सामने उसका वही अपमान कराते है। इस भयंकर अवस्था का प्राचीन कवियो की तरह अत्यन्त मार्मिक शब्दों में वर्णन कर भवानी बोले—इन दुरात्माओं को ही मैं दण्ड देता हूँ। अनाथ-दुर्बलों की रक्षा करता हूँ। किस तरह करता हूँ यह तुम इधर दो दिन मेरे साथ रहकर देखोगी?

प्रफुल्ल का हृदय प्रजा वर्ग के दुःखों की कहानी सुनकर द्रवित हो गया था। उसने भवानी को कोटि कोटि धन्यवाद दिया। बोली—मै आपके साथ चलूंगी। धन खर्च करने का यदि मुझे अधिकार मिल गया है तो मै भी कुछ धन अपने साथ ले चलूंगी। दुःखियो को दे आऊंगी।

भवानी—मै कह रहा था कि इस काम में कुछ दूकानदारी चाहिये। यदि मेरे साथ चलना है तो ठाटबाट से सजधज कर चलना पडेगा, सन्यासिनी वेश में यह कार्य सिद्ध न होगा।

प्रफुल्ल—अपने सभी कर्मों को मैं श्रीकृष्ण मे अर्पण कर चुकी हूँ, कर्म उनका है मेरा नही। कर्मोद्धार के लिए जो सुख दुःख है, वह मेरा नही है, उनका ही है। उनके कर्मों के निमित्त जो कुछ करना पडेगा मैं करूंगी।

भवानी की मनोकामना पूरी हो गयी। जब वे डाका डालने के लिए अपने दल के साथ निकले तब प्रफुल्ल भी धन का घडा साथ ले उनके साथ चल पड़ी। निशि भी साथ गयी।

भवानी ठाकुर की अभिसन्धि जो कुछ भी रही हो, उनको एक शान चढाये हुए तेज हथियार की जरूरत थी। इसीलिए लगातार पांच वर्ष तक प्रफुल्ल पर शान देकर उन्होने तीक्ष्ण अस्त्र मे उसे परिणित कर दिया था। पुरुषपात्र मिलने से अच्छा होता किंतु प्रफुल्ल की तरह विविध गुणों से युक्त पुरुष उन्हे मिला ही नहीं—विशेषतः इतना अपार धन किसी पुरुष के पास नही था।

धन की धार जबरदस्त होती है किन्तु भवानी से एक बहुत बडी भूल हो गई थी—प्रफुल्ल एकादशी के दिन बलात् मछली खाया करती थी, इस बात पर जरा गम्भीरता के साथ विचार कर समझ लेते तो अच्छा होता। जो भी हो, अब हम प्रफुल्ल को जीवन तरंग की भँवर में छोड कर पाच वर्ष और सो रहें। प्रफुल्ल को दूसरी शिक्षा मिली है। किन्तु कर्म की शिक्षा नहीं मिली है। इधर के पाच वर्ष उसे कर्म शिक्षा ग्रहण करने दे।

द्वितीय खण्ड

पहला परिच्छेद

पाच और पाच मिलकर दस वर्ष बीते। जिस दिन प्रफुल्ल को कुजात की लडकी कहकर हरबल्लभ ने निकाल बाहर किया था, उस दिन से ये दस वर्ष हरबल्लभ राय के लिए अच्छे नही बीते। देश की दुर्दशा का वर्णन पहले ही कर चुका हूँ। इजारादार देवी सिह के अनाचार, उसके अतिरिक्त डाकुओ का आतक। एक बार हरबल्लभ के इलाके से लगान का रुपया चालान आ रहा था, डाकुओ ने उसे लूट लिया। अतः देवीसिंह की मालगुजारी न दी जा सकी। देवीसिह ने उनका एक इलाका बेच कर मालगुजारी वसूल की। इस प्रकार जायदाद हड़प लेना देवीसिह के बाये हाथ का खेल था। हेस्टिग्स साहब और गगागोविंद सिह की कृपा से सभी सरकारी कर्मचारी देवीसिह के आज्ञापालक थे, कुछ खरीद फरोख्त करने के सम्बन्ध मे वह जैसा ठीक समझता था, वही होता था। हरबल्लभ का दस हजार रुपये का इलाका ढाई सौ रुपये मे देवीसिह ने खरीद लिया। उससे अधिक मालगुजारी की वसूली कुछ भी नहीं हुई, उन पर कर्ज लगातार बढने लगा। देवीसिह के तकाजे से परेशान हो, कैद होने की आशङ्का से भयभीत होकर हरबल्लभ ने एक और सम्पत्ति बेचकर ऋण चुका दिया। इन सब कारणों से आमदनी बहुत घट गई। किन्तु खर्च कुछ भी नही घटा—बँधा हुआ खर्च घटाया नही जा सकता। सभी लोगों का कभी-कभी ऐसा समय उपस्थित हो जाता है, जब लक्ष्मी आकर

कहती है—या तो अपनी पुरानी चाल छोड दो—नही तो मुझे त्याग दो। बहुत से लोग उत्तर देते हैं—माँ, तुमको छोड़ देता हूँ, अपना चलन नही छोड सकता। ऐसे ही लोगो मे से हरबल्लभ एक हैं। होली—दुर्गोत्सव, क्रियाकर्म, दानध्यान, फौजदारी, मुकदमा, सभी यथावत् चलता रहा—बल्कि जब से डाकुओं ने चालान लूट लिया था, तब से लठैतो के लिए खर्च कुछ बढ गया था। खर्च अब पूरा नही पड़ता था। किश्त के बाद किश्त, सरकारी मालगुजारी बाकी चढने लगी। धन-सम्पत्ति जो भी बची-खुची थी उसके भी बिक जाने की घड़ी आयी, अब बचने की कोई आशा न रही। कर्ज चढ़ता ही गया, ब्याज असल से अधिक बढ़ गया—रुपया अब उधार भी नही मिलता था।

इधर देवीसिंह का पावना प्रायः पचास पचास हजार रुपया उन पर हो गया। हरबल्लभ किसी तरह भी रुपया चुका न सके। अन्त मे हरबल्लभ राय की गिरफ्तारी के लिए वारण्ट निकला। उस युग में गिरफ्तारी के वारण्ट के लिए बहुत कानून-कायदे ढूँढने की जरूरत नही थी। तब तक अँग्रेजो के कानून नही बने थे। सब कुछ अधिकारियों की मनमानी घरजानी थी।

दूसरा परिच्छेद

आज यहाँ बड़ी धूम धाम है। व्रजेश्वर ससुराल आये है। किस ससुराल, यह बताने की आवश्यकता नही है। सागर के पिता के घर आये है। उन दिनों एक दामाद का ससुराल आना कोई साधारण बात नही थी। इसके सिवा ससुराल जब-तब आते भी नही थे। पोखरे पर बढिया मछलियो की तलाश होने लगी।

मछुओं के अत्याचार से मछलियों का प्राण बचाना कठिन हो गया। मछुओं की स्त्रियों के छपाछप से पोखरी का जल गन्दा होने लगा—मछलियाँ चुरा लाने की आशा मे लड़के स्कूल से भाग खडे हुये। दही, दूध, छेना, नैनू, मक्खन की माँग बढ़ गयी जिससे ग्वालों का दिमाग चढ़ गया। कोई ग्वाला दूध मे एक

सेर जल के बजाय तीन सेर मिला देता, तीन सेर का एक सेर डाल देता था। कपडे का व्यापारी कपड़े का गटठ्र सिर पर लादे घूमते-घूमते थककर चूर था, किसी को कुछ पसन्द नही होता कि कौन धोती, कौन कपड़ा दामद को देना चाहिये। मुहल्ले की स्त्रियों मे अजीब तहलका मच गया। जिसके पास जो गहने थे ! वे उनकी मरम्मत कराने लगीं, साजने लगीं, नये सिरे से गुँथवाने लगी। जिनके पास गहने नही थे, उन्होंने चूड़ियाँ खरीदीं, कंगन खरीदे, जेवर, दूसरे से माँग जाँच कर वेषभूषा का जुगाड किया—बिना इसके दामाद को देखने कैसे जाया जा सकता है ? जो हँसी-मजाक करने मे नाम पा चुकी थीं, उन्होंने मन ही मन पुराने से पुराने मजाक सोच डाले। जिनकी प्रसिद्धि नही थी; वे चोरी का माल छिपाने की चेष्टा मे लगी थीं। बातों का मजाक पीछे होगा, खाने का पहले। इसके लिए घर-घर कमेटी बैठ गयी। बहुत से कृत्रिम खाद्य पदार्थ, पेय, फल फूल आदि तैयार होने लगे। मधुर अधर मधुर हँसी से और साध से लगाई मिस्सी से खिल गये।

किंतु जिसके लिये इतना उचलाचाल हो रहा था, उसके मन में सुख नही था। ब्रजेश्वर आमोद-प्रमोद के लिए ससुराल नही आये थे। बाप की गिरफ्तारी का वारण्ट निकला है। बचने का कोई उपाय नही है। कोई रुपया उधार नही देता। ससुर के पास रुपया है—ससुर चाहें तो उधार दे सकते हैं, इसीलिए ब्रजेश्वर ससुर के सास आये हैं।

ससुर ने कहा—बेटा, मेरे पासे रुपया है; वह तो तुम्हारे ही लिए है—मेरा और कौन है; तुम्ही बताओ ? किंतु ये रुपये जितने दिन मेरे पास हैं उतने दिन सुरक्षित हैं,—तुम्हारे बाप को देने से क्या वे बचेंगे ? महाजन सब खायेंगे। इसलिए क्यों अपना धन आप ही नष्ट करना चाहते हो ?

ब्रजेश्वर बोला—रहने दीजिये—मुझे धन की ऐसी चाह नहीं है, पिताजी को बचाना मेरा पहला फर्ज है।

ससुर ने रूखे भाव से कहा—तुम्हारे बाप के बच जाने से मेरी लड़की को क्या सुख मिलेगा ? रुपया मेरी लड़की के पास रहेगा तो उसका दुःख कटेगा। ससुर के बचने से उसका दु:ख कम न होगा।

कड़वी बात सुन ब्रजेश्वर को बड़ा क्रोध आया। ब्रजेश्वर ने कहा तो आपकी लड़की धन लेकर रहे। मैं समझ गया, मेरी कोई जरूरत आपको नहीं है। मैं जीवन भर उसका और आपका मुंह भी नही देखूंगा।

तब सागर के पिता ने दोनों आँखें लाल-पीली कर ब्रजेश्वर को खूब झिड़का! ब्रजेश्वर ने भी कड़ा-कड़ा उत्तर दिया।

ब्रजेश्वर अपना सामान-असबाब बाँधने लगे। सब सुनकर सागर पर तो मानो वज्र ही गिर गया।

सागर की मा ने दामाद को बुला भेजा। उन्होंने दामाद को बहुत समझाया। दामाद का क्रोध दूर नही हुआ। उसके बाद सागर की पारी आयी।

उस जमाने मे बहू के ससुराल मे होने पर दिन मे पति से भेंट होना जितना कठिन था, मायके मे उतना नही था। सागर के साथ एकान्त में ब्रजेश्वर की भेट हुई। सागर ब्रजेश्वर के पैरों पर गिर पड़ी, बोली—एक दिन और रहो—मैंने तो कोई अपराध नही किया ?

ब्रजेश्वर उस समय बड़े आवेश में थे—क्रोध से उन्होंने अपना पैर हटा लिया। क्रोध में शारीरिक क्रियाएं बहुत झटके से होती है और हाथ-पैरों की गति ठीक इच्छानुसार नही होती। कोई काम करते समय प्राय: बिगड़ ही जाता है। इस कारण भी और कुछ सागर की घबराहट के कारण उनके पैर हटाते ही अनर्थ हो गया। पैर कुछ जोर से सागर के शरीर पर जा लगा। सागर ने समझा कि पति ने क्रोध में उसके लात मार दी है। सागर पति का पैर छोड़ कुपिता सर्पिणी की तरह उठ खड़ी हुई। बोली—क्या ? तुमने मेरे लात मारदी ?

वास्तव मे लात मारने की इच्छा ब्रजेश्वर की नही थी—इतना कह देने से ही बात खतम हो जाती। किन्तु एक तो सागर क्रोध में आ गई थी, इसके सिवा वह आँखे तरेर कर खड़ी हो गई—ब्रजेश्वर का पारा भी चढ़ गया। वे बोले—यदि मार ही दी तो क्या ? तुम बड़े आदमी की लड़की हो सकती हो। किन्तु पैर मेरा है; जिसको तुम्हारे बाप ने, जिन्हे बड़े आदमी होने का बड़ा गर्व है, एक दिन पूजा था।

सागर ने क्रोध में ज्ञान खो दिया—बोली—उन्होंने मूर्खता की थी। मैं उसका प्रायश्चित करूंगी।

ब्रजेश्वर—बदले में लात मारोगी क्या ?

सागर–मैं उतनी अधम नही हूँ। किन्तु यदि मैं ब्राह्मण की लड़की हूं, तो तुम मेरा पैर······

सागर की बात खत्म भी न हो पायी थी कि पीछे की खिडकी से किसी ने कहा—मेरा पैर अपनी गोद में रखकर नौकर की तरह दबाओगे।

सागर के मुख से कुछ उसी तरह की बात निकलने को थी। सागर ने, बिना सोचे-समझे, पीछे की तरफ देखे बिना वही बात दोहरा दी,–मेरा पैर अपनी गोद में रखकर नौकर की तरह दबाओगे।

ब्रजेश्वर भी क्रोध से तमतमा कर किसी तरफ नजर उठाये बिना ही बोले–मेरी भी यही प्रतिज्ञा है। जब तक मैं तुम्हारा पैर नही दबा लेता, तब तक मैं भी तुम्हारा मुख न देखूंगा। यदि मेरी यह प्रतिज्ञा भंग हो जाय, तो मैं ब्राह्मण नही।

तब क्रोध से उबल पैर पटकते ब्रजेश्वर चले गये। सागर पैर पसारकर रोने लगी। उसी समय, जिस कमरे में बैठी सागर रो रही थी, उसी में एक परिचारिका ने यह देखने के लिए कि ब्रजेश्वर के चले जाने के बाद सागर की क्या अवस्था है, अन्दर प्रवेश किया, बहाने से हीला-हवाला करके दो-एक काम करने लगी। तब तक सागर को याद पड़ गया कि खिडकी के पास कोई बोल रहा था।

सागर ने उससे पूछा—तूने खिड़की के पास से कुछ बात कही थी ?

उसने कहा—कौन, नही तो ?

सागर बोली—तो जाकर देख तो खिडकी के पास कौन है ?

तब तक साक्षात् भगवती की तरह रूपवती और अनुपम तेजस्विनी एक स्त्री ने कमरे में प्रवेश किया। वह बोली,—खिडकी के पास मैं थी।

सागर ने पूछा–तुम कौन हो जी ?

स्त्री–तुम लोगों में से कोई क्या मुझे नही पहचानतीं ?

सागर बोली–नही! कौन हो तुम ?

उस स्त्री ने उत्तर दिया—मैं हूं देवी चौधरानी।

परिचारिका के हाथ मे एक पनडब्बा था, झन-झन करता हुआ वह गिर

पड़ा। वह भी कराहते हुये सिर पकड़ कर बैठ गयी। कमर का आंचल खिसक कर गिर गया।

देवी चौधरानी ने उसकी तरफ घूम कर कहा—चुप रह हरामजादी! चुप खडी रह!

परिचारिका रोते-रोते उठ कर ठक सी खड़ी हो गई। सागर के भी शरीर से पसीना आ रहा था।

उसके भी मुख से बात नहीं निकली। जो नाम उन दोनों के कानों में सुनाई पडा उसे बंगदेश का बच्चा हो या बूढा, किसने नही सुना था? वह नाम अत्यन्त डरावना था।

किन्तु थोडी ही देर बाद सागर हँस पड़ी। देवी चौधरानी भी तब हँसने लगी।

तीसरा परिच्छेद

वर्षा ऋतु की चांदनी रात है। इस समय चांदनी मे चमक तो तेज नही है। बहुत मधुर है, कुछ अन्धकार की छाप उस पर है—पृथ्वी के स्वप्नमय आवरण की तरह त्रिधारा नदी वर्षा के जलप्लावन से लबालब है, चन्द्रमा की किरणें उस द्रुतगामिनी नदी के जल पर—स्रोत पर, चकोहों पर, कभी—कभी छोटी छोटी लहरों पर थिरक रही है। कहो-कहो जल कुछ-कुछ उछलने सा लगता है, वहां जरा झलक पैदा हो जाती है, रेती से टकरा कर छोटी लहरें जहां टूटती हैं, वहाँ भी कुछ झलक पैदा हो जाती है। किनारे के पेड़ों की जड़ों तक जल पहुंच गया है—पेडों की छाया पड़ने से वहाँ का जल गहरा काला हो गया है। अंधेरे में पेड़ों के फल, फूल, पत्तों को बहाता हुआ तेज स्रोत चला जा रहा है। किनारे पर टकरा कर जल कुछ तर-तर-कल-कल छप-छप शब्द कर रहा है—किन्तु यह है सब घने अंधेरे में ही। नीरव अन्धकार में वह प्रबल जलधारा समुद्र की खोज में विरही पक्षिणी की सी तेजी से दौडती जा रही है। तट पर असंख्य प्रकार के शब्द हो रहे हैं, कगारों के गिरने से घोर गर्जन सा होता है। सब मिलकर एक गगनव्यापी शब्द पैदा कर रहे हैं।

उस त्रिधारा नदी के वक्ष पर तट के समीप ही एक बजरा बँधा हुआ है। बजरे के पास ही एक बडे इमली के पेड की छाया मे, घोर अन्धकार मे एक और नाव बँधी है। नाव के सम्बन्ध मे पीछे बताऊँगा, पहले बजरे की कहानी लिख दूं। बजरा रग-बिरगे रगो से विचित्र है, उस पर कितनी ही तरह की मूर्तियाँ खिची है। उसकी पीतल की बाहो और डडो आदि पर चादी का पत्तर चढा है। सामने के भाग में एक घडियाल का मुख बना है, उसके ऊपर भी पत्तर चढा है। सर्वत्र साफ-स्वच्छ, उज्ज्वल, साथ ही निस्तब्ध है। मल्लाह लोग एक तरफ बाँसो पर पाल चढ़ा कर लेटे हुए है। किसी के जागते होने का आभास भी नही है। केवल बजरे की छत पर एक आदमी है। वहाँ का दृश्य भी अपूर्व है।

छत पर एक छोटा मखमली गलीचा बिछा हुआ है। वह गलीचा २ अगुल मोटा है—बहुत मुलायम तथा तरह-तरह के चित्रो से चित्रित है। गलीचे पर १ स्त्री बैठी है। उसकी अवस्था का अनुमान करना कठिन है। २५ वर्ष के पहले वैसा पूर्ण विकसित शरीर नही दिखाई पडता, २५ वर्ष के बाद यौवन का वैसा लावण्य भी देखने को नही मिलता। अवस्था जो भी हो, वह स्त्री परम सुन्दरी है इसमे सन्देह नही है। यह सुन्दरी कृश शरीर की नही है, अथवा इसे मोटी कहना भी उसकी निदा होगी। वस्तुत. इसका प्रत्येक अवयव सोलहो कलाओ से ओत-प्रोत है—आज यह सौंदर्य, त्रिधारा नदी के तटो पर जैसे लबालब भरा हुआ है उसका सौदर्य यौवन भी उसी तरह छलछला रहा है। विलक्षणलम्बाई है उसके शरीर की। शरीर उतना लम्बा होने के कारण मैं उसे स्थूलागिनी न कह सका। यौवन-वर्षा की बाढ का जल, उस विशाल मनोहर आधार मे समा गया—ऊपर उफना नही सका। किन्तु तट पर जल थल २ कर रहा है—सदा अस्थिर हो रहा है। जल अस्थिर है, किन्तु नदी अस्थिर नही है; वह तरगहीन है। उसका लावण्य तो चञ्चल है, किन्तु वह लावण्यमयी चञ्चल नही है—वह एकदम निर्विकार है। शान्त है, गम्भीर है, मधुर है, साथ ही आकर्षक है; उस ज्योत्सनामयी नदी की अनुसगिनी प्रतीत होती है। उस नदी की तरह वह सुन्दरी अपूर्व सुसज्जिता है। इन दिनो ढकहिया कपड़े की उतनी इज्जत नही है—किंतु एक सौ वर्ष पहले वह कपड़ा अच्छा भी बनता था, उसका उपयुक्त आदर भी

होता था । रमणी एक साफ महीन ढकहिया साडी पहने हुए थी उसमे जरी के फूलो का कसीदा कढा हुआ था । उसके भीतर हीरा-मोती से खचित अँगिया चमक रही थी । हीरा-पन्ना, मोती, सोने से वह समूचा शरीर सुशोभित था, ज्योत्मना के प्रकाश मे विचित्र ही छटा थी उस ठाठकी । नदीजल पर जिस तरह ज्योत्सना की झलक दमकती है—इस शरीर की भी वैसी ही शोभा थी । ज्योत्सना से चमकते हुए नदी के स्थिर जल की तरह यह शुभ्र वस्त्र सुशोभित था । और जल मे किसी-किसी जगह जैसे ज्योत्सना की चमक कौंध उठती है, शुभ्र वस्त्र के बीच-बीच जहा-तहाँ उसी तरह हीरा मोती दमदमा रहे थे। फिर नदी के तटवर्ती स्थान मे जिस तरह वनछाया का अंधेरा रहता है, इसकी काली घनी केश राशि भी उसी तरह अगो के ऊपर बिखरी हुई पडी है । घुंघराले केश लहराते हुए–विचित्र ढग से सँवारे गये पीठ पर, कधे, बाहो और छाती पर फैले हुए है । उसकी स्निग्ध कोमल प्रभा पर चन्द्रमा की चाँदनी थिरक कर नाच रही है । सुगन्धित द्रव्यो से वायुमडल व्याप्त है, जूही के फूल केशो मे गुँथे हुए हैं। छत के ऊपर गलीचे पर बहुमूल्य रत्नो से सुसज्जिता वह सुन्दरी सरस्वती मूर्ति की भाँति वीणा बजाने मे तल्लीन है । चन्द्रमा की ज्योति के साथ उसका ज्योत्सना सरीखा वर्ण एकरूप हो गया है । उसी के साथ वीणा की मधुर तत्री रागिनी भी मिली जा रही है–जिस तरह जल के कण-कण मे चन्द्रमा की किरणे नाच रही हैं, जिस तरह इस सुन्दरी के अलकारो मे चन्द्रमा का प्रकाश थिरक रहा है, वन्य-कुसुम पराग की सुगन्ध से परिपूर्ण वायुतरगो द्वारा वीणा की मधुर तान भी उसी तरह आकाश मे नाच रही थी । तरह-तरह की स्वर लहरी वीणा के तारों से निकल रही थी, उसका वर्णन करना कठिन है । वीणा कभी रो उठती, कभी वीररसपूर्ण राग निकालती । कभी मानो नाचने लगती; कभी सौम्यभाव का प्रदर्शन करती थी । कभी हुँकारने लगती–बज कर जरा-जरा मुसुकाने लगती थी । झिंझिट, खम्बाज, सिधु–केदार,हम्बीर, बेहाग–कितनी ही मीठी व गम्भीर रागिनिया बजी–कनाडो , सहाना, वागीश्वरी आदि कितनी ही मनोहर तानें छिडी, बजी और नादकुसुममाला की तरह नदीकल्लोल मे समा गयी । उसके बाद दो एक परदे चढा, उतारकर, सहसा नवीन उत्साह से वह विद्यावती वीणा के तारो को झनकारने लगी । कानो की बालियाँ हिलने लगी, काली नागिनों

की तरह केश फहरा उठे—वीणा नटरागिनी बजाने लगी। तब जो लोग पाल के नीचे एक घाट पर चुपचाप सोये से पडे थे उनमें से एक व्यक्ति उठ कर चला आया और चुपचाप उस देवी के समीप खडा हो गया।

यह था एक पुरुष, लम्बा शरीर, बलिष्ठ गठन बडे-बडे गलमुच्छ रक्खे था वह। गले मे जनेऊ पडा था। निकट आकर उसने पूछा—क्या बात है ?

उस स्त्री ने कहा—तुम क्या देख नही रहे हो ?

पुरुष ने कहा—कुछ भी तो नही। वह आ रहा है क्या ?

गलीचे पर एक छोटा सा दूरबीन पडा था। उन दिनो भारतवर्ष मे दूरबीन नया-नया आने लगा था। दूरबीन लेकर सुन्दरी ने उस व्यक्ति के हाथ मे दे दिया। वह कुछ बोली नही। उसने दूरबीन आखों के सामने रख कर सब तरफ गौर से देखा। दूर पर एक दूसरा बजरा दिखाई पडा तब वह बोला—देख लिया उस मोड पर वह क्या है ?

उत्तर मिला—इस नदी मे आजकल किसी दूसरे बजरे के आने की सम्भावना नही है।

पुरुष पुनः दूरबीन लेकर देखने लगा। युवती वीणा बजाते-बजाते ही बोली—रंगराज !

रंगराज ने उत्तर दिया—क्या आज्ञा है ?

क्या देख रहे हो ?

कितने आदमी हैं यही देख रहा हूँ ?

कितने हैं ?

ठीक पता नही चलता। बहुत नही हैं। बजरा खोल दूँ ?

खोल दो—छोटी नाव ले अँधेरे-अँधेरे में चुपचाप आगे चले जाओ।

तब रंगराज ने पुकार कर आज्ञा दी--नाव खोल दो।

चौथा परिच्छेद

पहले ही कह चुका हूँ, बजरे के पास इमली के पेड़ के नीचे एक और नाव अंधियारी में छिपी हुई थी। उसकी लम्बाई थी साठ हाथ, चौड़ाई तीन हाथ से अधिक नही थी। उसमें प्राय. पचास आदमी सटे हुए सोये पड़े थे। रगराज का सकेत मिलते ही वे पचासों एक ही साथ उठकर बैठ गये। डाड-पतवार के बजाय सभी ने एक-एक बरछा और एक-एक ढाल निकाल ली। हथियार किसी ने हाथ मे नही रक्खा। सभी ने पास रक्खे चैलो के ऊपर रख दिया। रख कर सभी एक-एक डांड़ पर हाथ रखकर बैठ गये।

चुपचाप नाव खोलकर, उन लोगों ने बजरे से सटा दी। रंगराज तब स्वत: पाच हथियार बांध उसके ऊपर चढ गया। उसी युवती ने उसको पुकार कर कहा—पहले मैंने जो कुछ कहा है, उसे याद रखना?

"याद है!" कहकर रगराज नाव पर चढ़ गया। नाव चुपचाप किनारे-किनारे आगे बढ़ चली। इधर जिस बजरे को रंगराज ने दुरबीन से देखा था, वह नदी को चीरता हुआ तेज स्रोत में तीव्र गति से आ रहा था। नाव को बहुत आगे न बढना पड़ा। बजरा जब निकट आ गया तब नाव किनारा छोडकर बजरे की तरफ दौड़ चली। पचास डाँड़ थे, किंतु शब्द एकदम नही हो रहा था।

बजरे की छत पर आठ हिन्दुस्तानी पहरेदार रक्षकरूप मे बैठे थे। इतने आदमियों को साथ लिये बिना उस जमाने में रात के समय कोई नाव खेने का साहस नही करता था। उनमें से दो हथियारबन्द सैनिक, सिर पर लाल पगडी बांधे छत के ऊपर बैठे थे। बाकी छ: मधुर दक्खिनी वायु मे चन्द्रमा की चांदनी मे काली दाढ़ियां फटकारे गहरी निद्रा मे अभिभूत थे। जो लोग पहरा दे रहे थे, उनमें से एक ने देखा। एक नाव बजरे की तरफ आ रही है। उसने प्रथा के अनुसार चिल्लाकर कहा, "नाव तफात्।"

रंगराज ने उत्तर दिया, "तुझे जरूरत हो, तू तफात् जा।"

पहरेदार ने देखा कि कोई बेढब है। डराने के लिए उसने बन्दूक की एक झूठी आवाज दाग दी। रंगराग समझ गया, यह झूठी आवाज है। हँसकर बोला—क्यों पांड़े महाराज। एक भी छर्रा नहीं है। उधार दे दूं?

यह कहकर रंगराज ने उस पहरेदार का माथा लक्ष्य करके बन्दूक उठा ली। उसके बाद बन्दूक झुकाकर बोला, "तुमको इस बार मै न मारूँगा। इस बार मै तुम्हारी लाल पगडी ही उडा दूंगा।" कहते-कहते बन्दूक रख कर उसने धनुष पर एक तीर चढा कर छोड दिया। पहरेदार की लाल पगडी उड गयी। पहरेदार 'राम-राम' कह उठा।

पलक मारते नाव आकर बजरे के पीछे सट गई। उसी समय दस-बारह हथियारबन्द आदमी बजरे पर कूदकर चढ गये। जो छ सिपाही सोये पडे थे; वे बन्दूक की आवाज से जाग तो गये थे किंतु नीद की खुमारी मे हथियार टटोलने मे देर लग गई। फुर्तीले हाथों से आक्रमणकारियो ने उन लोगो को क्षण भर में बाँध लिया। जो दो आदमी पहले से जाग रहे थे, उन्होने कुछ देर मोर्चा लिया किंतु वह जरा ही देर। आक्रमणकारी सख्या मे अधिक थे, शीघ्र उन लोगों को परास्त कर बाँध दिया। तब नाविक लोग बजरे के अन्दर प्रवेश करने को तैयार हुए। बजरे का दरवाजा भीतर से बन्द था।

भीतर ब्रजेश्वर थे। वे ससुराल से अपने घर वापस जा रहे थे। रास्ते मे यह विपद् आपडी। यह केवल उनके दुस्साहस का फल था। दूसरा कोई भी रात्रि मे बजरा नही खोलता।

रंगराज ने किवाड थपथपाते हुए पुकारा—महाशय ! दरवाजा खोल दे।

अन्दर से तुरन्त नीद से उठे हुए ब्रजेश्वर ने उत्तर दिया—कौन है ? क्या गोलमाल है ?

रंगराज ने कहा—कुछ भी नहीं, बजरे पर डाका पड़ रहा है।

ब्रजेश्वर कुछ देर तक सन्नाटे मे आ गये। फिर पुकारने लगे—पाड़े ! तिवारी, रामसिह !

रामसिह ने छत के ऊपर से जबाब दिया—धर्मावतार ! सालों ने सभी को बाँध रक्खा है।

ब्रजेश्वर ने कुछ मुसकुराकर कहा—सुनकर बहुत दुख हुआ। तुम लोगों की तरह वीर पुरुषों को रोटी-दाल खाने को न देकर बाँध रक्खा है। डाकुओं का यह बडी भूल है। चिन्ता मत करो—कल से तुम्हारे रोटी-दाल का परिमाण बढा दूंगा।

सुनकर रंगराज भी जरा हँस पड़ा । बोला—मेरा भी यही मत है, अब दरवाजा खोल दीजिएगा शायद ।

ब्रजेश्वर ने पूछा—तुम कौन हो ?

रंगराज—मैं एक डाकू मात्र हूँ । दरवाजा खोल दीजिये यही निवेदन है ।

क्यो, दरवाजा खोलूं ?

रंगराज—आपका सर्वस्व लूट लेने की इच्छा है ।

ब्रजेश्वर बोला—क्यो ? मुझे क्या तुमने हिन्दुस्तानी सिपाही समझ रक्खा है ? मेरे हाथ मे दुनाली बन्दूक है, तैयार ! कमरे मे जो पहले प्रवेश करेगा अवश्य ही उसके प्राण ले लूँगा ।

रंगराज—हम मे से एक ही आदमी प्रवेश न करेगा, आप कितनो को मारियेगा ? आप भी ब्राह्मण है, मैं भी ब्राह्मण हूँ । एक तरफ ब्रह्महत्या हो ही जायगी, व्यर्थ ब्रह्महत्या की जरूरत ही क्या है ?

ब्रजेश्वर ने कहा—उस पाप को मै ही ओढ लूं तो क्या ठीक हो ?

बात पूरी भी नही होने पाई थी कि चर-चर आवाज होने लगी । बजरे का बगल की तरफ का एक किवाड तोडकर एक डाकू ने कमरे मे प्रवेश किया । यह देख ब्रजेश्वर ने हाथ की बन्दूक घुमाकर उसके सिर पर चोट की । वह डाकू मूर्छित हो गया । उसी समय रंगराज ने बाहर के किवाड पर जोर से लात मारी । किवाड टूट गये । रंगराज ने भी कमरे म पैर रखा । ब्रजेश्वर फिर बन्दूक घुमाकर रंगराज पर निशाना चलाने जा ही रहे थे कि रंगराज ने उनके हाथ से बन्दूक छीन ली । दोनो ही समान बलिष्ट थे, परन्तु रंगराज के हाथ बहुत मंजे हुये तथा फुर्तीले थे । ब्रजेश्वर ने तब खूब मुट्ठी को दृढ बाधकर पूरी ताकत से रंगराज के माथे पर घूसा तान दिया । रंगराज ने घूँसे को हाथ से पकड लिया । बजरे मे एक तरफ अनेक हथियार टंगे थे । ब्रजेश्वर ने उसमे से एक तेज धारवाली तलवार लेकर हँसते हुये कहा—"देखो महाराज, ब्रह्महत्या से मैं नही डरता हूँ ।" यह कहकर रंगराज का सिर उडा देने के लिए ब्रजेश्वर ने तलवार तान ली । उसी समय और चार-पाव डाकू खुले दरवाजे से कमरे मे झपट कर, ब्रज पर टूट पड़े । उठी हुई तलवार को हाथ से छीन लिया । दो आदमियों ने दोनो हाथ दबा लिये । एक ने रस्सी लेकर ब्रजेश्वर से कहा—क्या तुमको बाँधना ही पड़ेगा ?

व्रजेश्वर ने कहा—बाँधो मत। मैंने अपनी हार मान ली। क्या चाहते हो बताओ—मैं दे रहा हूं।

रंगराज—आपके पास जो कुछ है, साथ ले जाऊँगा। वैसे कुछ छोड़ भी सकता था—किन्तु जो घूंसा आपने ताना था, वह मेरे सिर लगता तो सिर ही फट जाता—अब मै एक पैसा भी न छोड़ूंगा।

बृजेश्वर बोला—जो कुछ बजरे में है, सब ले जाओ, अब में आपत्ति न करूंगा।

व्रजेश्वर के मुंह से यह बात निकलने के पहले ही डाकूओं ने सारा सामान बजरे से नाव मे ले जाना शुरू कर दिया था। अब प्राय: २५ आदमी बजरे पर चढ गये थे। चीजें बजरे पर विशेष कुछ नही थीं। केवल पहनने के कपड़े, पूजा की सामग्री ऐसी ही चीजें थीं। क्षण भर में उन लोगो ने उन चीजों को नाव पर पहुँचा दिया। तब व्रज ने रंगराज से कहा—सब सामान तो ले चुके अब क्यों परेशान करते हो, अपना रास्ता लो।

रंगराज ने उत्तर दिया—जा रहा हूँ, किन्तु आप को भी हमारे साथ चलना पड़ेगा।

व्रज—यह क्या ? मुझे कहाँ जाना पड़ेगा ?

रंग—हमारी रानी जी के पास।

व्रज—तुम लोगों की रानी कौन है ?

रंग—हम लोगों की राजरानी।

व्रज—वे कौन हैं ? डाकुओं की भी राजरानी होती हैं, यह बात तो मैंने नहीं सुनी।

रंग—देवी रानी का नाम आपने कभी नही सुना ?

बृज—ओहो ! तो तुम लोग देवी चौधरानी के दल के हो ?

रंग—दलबंदी की बात इसमे क्या है ? हम रानी जी के नमकहलाल सेवक हैं।

बृज—जैसी रानी हैं, वैसे ही सेवक ! तो मुझे रानी जी के पास क्यों जाना पड़ेगा ? मुझे कैद कर कुछ वसूल करोगे यही अभिप्राय है न ?

रंग—यही तो बात है। बजरे में कुछ भी नही मिला। आप को रोक रखने से बाद मे कुछ मिल भी सकता है।

ब्रज—मुझे चलने की इच्छा हो रही है—तुम लोगों की राजरानी दर्शनीय है, यह मैं सुन चुका हूँ। शायद वे युवती है?

रगराज—वे हम लोगों की मां हैं–सन्तान माता की उम्र का हिसाब नही रखती।

ब्रज—सुना है वे अपूर्व सुन्दरी हैं।

रग—हमारी मा भगवती के समान हैं।

ब्रज—तो चलो, भगवती के दर्शन कर आऊं।

यह कहकर बृजेश्वर रंगराज के साथ कमरे के बाहर चले आये। उन्होंने देखा कि बजरे के माझी मल्लाह सभी जल में रस्से पकडे खडे हैं। बृजेश्वर ने उनसे कहा—अब तुम लोग बजरे पर चढ़ सकते हो। डर की बात नही है। चढकर अल्लाह का नाम जपो। तुम लोगों की जान-माल और इज्जत सुरक्षित है। सचमुच तुम लोग बडे होशियार हो।

माझी लोग तब एक-एक करके बजरे पर चढने लगे। बृजेश्वर ने रगराज से पूछा—अब मेरे पहरेदारों का बन्धन क्या खोल सकते हो?

रगराज ने कहा—मुझे आपत्ति नही है, किन्तु वे लोग यदि हाथ खुलने पर हमारे ऊपर आक्रमण करेंगे तो हम लोग आपका सिर काट लेंगे। यह बात आप उन लोगो को समझा दीजिए।

बृजेश्वर ने दरबानों को उसी तरह समझा दिया और आश्वासन दिया कि उन लोगों ने जैसी बहादुरी दिखाई है, उसके पुरस्कार स्वरूप शीघ्र ही उनकी खुराक बढा दी जायगी।

बृजेश्वर ने अपने नौकरों को यह आदेश दिया कि तुम लोग निशःङ्क चित्त से यहाँ बजरा लेकर ठहरो। कही भी मत जाना या कुछ भी मत करना। मैं शीघ्र लौट आऊंगा। यह कह कर वे रंगराज के साथ नाव पर चढ़ गये। नाविकों ने "देवी रानी की जय हो" का नारा लगा कर नाव खेना शुरू कर दिया। नाव तीव्र गति से चल दी।

पाँचवाँ परिच्छेद

ब्रजेश्वर ने रास्ते मे रंगराज से पूछा--कितनी दूर चलना है। तुम्हारी रानी जी कहाँ रहती है ?

रंग—उस बजरे को आप देख नही रहे हैं ? वह उनका ही है।

व्रज—वह बजरा ! मैने तो समझा था कि वह अंग्रेजों का जहाज है—रंगपुर लूटने के लिए आया है। तो इतना बड़ा बजरा क्यों है ?

रंग—रानी को रानी की तरह रहना पडता है ! उसमे सात कमरे है।

व्रज—इतने कमरों मे कौन लोग रहते हैं ?

रंग—एक मे रानी जी का दरबार लगता है, एक मे रानी जी सोती है। एक मे नौकरानियाँ रहती है। एक मे स्नानागार है। एक में रसोईघर है। एक मे बन्दीगृह है। शायद आपको आज उसी कमरे मे रहना पडेगा।

यह बातचीत हो ही रही थी कि नाव आकर बजरे से लग गई। देवी चौधरानी उस समय छत पर नही थीं। जब तक उनके सेवक डाका डाल रहे थे, तब तक वह छत पर बैठी हुई ज्योत्सना के प्रकाश मे वीणा बजाती रही किंतु उस समय बाजा नही बज रहा था। बेसुरा, बेताल, क्या बजाना चाहिए, क्या बज जाता। देवी अन्यमनस्क सी हो रही थी। उसके बाद वह नाव खुल गई, देवी उसी क्षण उतर कर कमरे के भीतर चली गयी।

इधर रंगराज ने नाव से निकल बजरे मे कमरे के द्वार पर आकर 'रानी जी की जय' का नारा लगाया। दरवाजे पर रेशमी परदा लटक रहा था। अन्दर कुछ दिखाई नही पड रहा था। अन्दर से देवी ने पूछा—क्या समाचार है ?

रंग—सब ठीक है।

देवी--तुम लोगों में से किसी को चोट आई है ?

रंग--किसी को भी नहीं।

देवी—तुम लोगो मे से किसी का बध हुआ है ?

रंग—किसी का भी नहीं। आपके आदेशानुसार ही काम हुआ है।

देवी—उन लोगों में से कोई घायल हुआ है ?

रंग—दो रक्षकों को दो-चार खरोंच लग गये हैं। काटे के खरोंच की तरह।

देवी—माल ?

रंग—मै सब ले आया हूँ। माल कोई बहुत नही था।

देवी—बाबू ?

रंग—बाबू को मैं पकड़ लाया हूँ।

देवी—हाजिर करो !

रंगराज ने तब ब्रजेश्वर को इशारा किया। ब्रजेश्वर नाव से आकर द्वार पर खड़े हो गये।

देवी ने पूछा—तुम कौन हो ? देवी का गला मानो रुँधा हो—आवाज बहुत साफ नही थी। ब्रजेश्वर कैसे व्यक्ति हैं, इतनी देर से पाठक शायद समझ गये होगे। भय किसको कहते है; यह शायद वे बचपन से ही नही जानते थे। जिस देवी चौधरानी के नाम से सारा उत्तरी बंगाल कांपता रहता था, उसी के सामने जाने पर ब्रजेश्वर को हँसी आ गयी। उन्होने मन मे सोचा-स्त्रियों से भी पुरुष को डर है यह तो मैने कभी नही सुना। स्त्री तो पुरुष की दासी है। बृजेश्वर ने हँसकर देवी की बात का उत्तर दिया—परिचय जानकर क्या करेंगी ? मेरे धन के साथ आपका प्रयोजन है, उसको आप पा गई हैं—मेरे नाम से तो रुपया ढल न जायगा।

देवी—ढल क्यों न जायगा ? तुम किस मूल्य के व्यक्ति हो, यह जान लेने से रुपये का बन्दोबस्त हो जायगा। (अब भी गला रुँधा सा प्रतीत हो रहा था)।

वृज—इसीलिये क्या मुझे पकड़वा मँगाया है ?

देवी—नही तो फिर तुमको यहाँ लाने का क्या मतलब ?

देवी परदे की आड में थी। किसी ने नही देखा कि देवी ने यह बात कहते समय अपनी आँखे पोछ डाली।

बृज—यदि मैं कह दूं कि मेरा नाम दुःखीराम चक्रवर्ती है तो क्या आप विश्वास करेंगी ?

देवी—नही।

बृज—तो फिर पूछने की जरूरत क्या है ?

देवी—तुम सही बताते हो या नहीं, यही देखने के लिए।

बृज—मेरा नाम है कृष्णगोविन्द घोषाल।

देवी -नहीं ।

व्रज —दयाराम बक्शी ।

देवी—यह भी नही ।

व्रज—वृजेश्वरराय ।

देवी—हो सकता है ।

इसी समय देवी के सामने एक और स्त्री आकर चुपचाप बैठ गई । बोली—गला रुँध गया है क्या ?

देवी की आखों के आंसू और रुक न सके—वर्षाकाल में खिले हुए फूलों मे जिस तरह जलकण भरे रहते हैं, डाल हिला देने से ही जल उनसे टपक कर गिर जाता है, उसी तरह देवी की आंखो मे जल भरा हुआ था, दूसरी स्त्री के पूछते ही कम्पन होकर वह झरने लगा । देवी ने तब उस स्त्री से धीरे २ कहा—मैं अब यह मजाक नही कर सकती, तू बातचीत कर । सब जानती तो है ही ?

इतना कहकर देवी उस कमरे से उठकर दूसरे मे चली गयी । वह स्त्री देवी का आसन ग्रहण करके वृजेश्वर से वार्तालाप करने लगी । इस स्त्री के साथ पाठको का परिचय हो चुका है । यही है पूर्वपरिचिता निशि ठकुरानी ।

निशि ने पूछा—इस बार तुमने ठीक बताया है तुम्हारा नाम है वृजेश्वराय !

वृजेश्वर को संदेह हो गया । परदे की आड मे उनको कुछ भी दिखाई नही पड़ रहा था । किन्तु आवाज से सन्देह हो गया कि जो स्त्री पहले बोल रही थी, शायद वह यह नही है । उसकी आवाज बहुत मीठी थी । यह शायद उतनी मीठी नही है । जो भी हो उत्तर में वृजेश्वर ने कहा—यदि मेरा परिचय जानती हैं तो आप जो मूल्य चाहे ले लीजिए; मै अपने स्थान को वापस जाऊँ ? क्या कीमत अदा करने पर मुझे आप छोड़ेगी ?

निशि—बीस कानी कौड़ी लेकर । आपके पास हैं क्या ? यदि हों तो, देकर जा सकते है ।

वृज—अभी इस समय तो मेरे पास नहीं हैं ।

निशि—बजरे पर से ले आइये ।

वृज—बजरे मे जो कुछ था उसे आपके अनुचर उठा लाये हैं । अब एक कानी कौड़ी भी वहां नही है ।

निशि—माझियों से उधार ले आओ।

बृज—माझी कानी कौड़ी नहीं रखते।

निशि—तो जितने दिन यह रकम भुगतान न करो उतने दिन यहीं कैद रहना होगा।

बृजेश्वर ने उसके बाद सुना, कमरे के अन्दर कोई दूसरी, स्वर से वह भी स्त्री ही प्रतीत होती है, देवी से कह रही है—रानी जी! यदि बीस कानी कौडियाँ ही इस मनुष्य का दाम हो, तो मै बीस कानी कौड़ियाँ आपको दे रही हू, मेरे हाथ आप इसको बेच दीजिए।

बृजेश्वर ने सुना, रानी ने उत्तर दिया—हर्ज ही क्या है? किन्तु उसको लेकर तुम क्या करोगी? ब्राह्मण है, जल भरेगा नहीं, लकड़ी चीर न सकेगा।

बृजेश्वर ने प्रत्युत्तर भी सुना। उस स्त्री ने कहा—रसोई बनाने वाली ब्राह्मणी मेरे पास नहीं है। मेरी रसोई यह पका देगा।

तब ब्रजेश्वर को सम्बोधित करके निशि ने कहा—सुन चुके, तुम बेच डाले गये। मै बीस कानी कौड़ी पा गई। जिसने तुम को खरीदा है उसके साथ जाओ रसोई पकानी पड़ेगी।

ब्रजेश्वर ने पूछा—वे कहाँ है?

निशि—वे स्त्री है, बाहर न निकलेगी, तुम ही भीतर चले जाओ।

———

छठा परिच्छेद

अनुमति पाकर,ब्रजेश्वर परदा उठाकर कमरे में चलेगये। जाकर उन्होने जो कुछ देखा, उससे वह आश्चर्य मे पड गये। कमरे की लकड़ी की दीवार की चित्रकारी विचित्र है। आश्विन मास में भक्त लोग दशभुजा दुर्गा की पूजा के निमित्त उसकी प्रतिमा का जैसा चित्रण करवाते है—यह चित्र वैसा ही आकर्षक है। शुम्भ-निशुम्भ का युद्ध, दसअवतार,अष्टनायिकाएँ,सप्त मात्रिकाएं,दश महाविद्या, कैलाश, वृन्दाबन, श्रीलंका, इन्द्रपुरी नवनारी कुंजर, चीरहरण—आदि के बहुत मार्मिक व कलात्मक चित्र बने है। उस कमरे मे ४ अगुल मोटा गलीचा बिछा है,

उसके ऊपर भी कितने ही चित्र हैं। उसके ऊपर कितनी ऊँची मसनदें लगी हैं–मखमल की कामदार चादर तीन तरफ उसी प्रकार के परदे लगे हैं। सोने का इत्रदान, गुलाब पाश पान का बिलहरा, सोने की तश्तरी, सुगन्धित फूलों का ढेर, सोने का ही गडगडा। पोरजर का सटका, सुनहरी नली के मुंह पर मोती मढे। उसके ऊपर कस्तूरी सुवासित तमाखू चढी है। दोनो बगलो मे ही चांदी के दो झाड हैं जिन में बहुत से सुगन्धपूर्ण दीपक चांदी की परियो के सिरों पर टिमटिमा रहे है। छत से एक छोटा प्रदीप सोने की जजीर के सहारे बीच मे लटका हुआ है। चारो कोनो मे चांदी की चार पुतलियां हाथ मे दीपक लिये खडी है। मसनद के सहारे एक स्त्री लेटी हुई है–उसके चेहरे पर जरी की कढाई का एक बहुत महीन रूमाल पडा है। मुख अच्छी तरह दिखाई नही पड रहा है। किन्तु तप्तकांचनसदृश गौरवर्ण–और कृष्णकुञ्चित केशो की झाँकी दीख पड रही है। कानो के आभूषण वस्त्रो के भीतर से झलक रहे है–उनमें भी बहुत बडी-बडी आँखों का तिरछा कटाक्ष और भी झलक रहा है। वह स्त्री लेटी हुई है–नीद में सोयी नही है।

दरबार वाले कमरे मे प्रवेश करने पर लेटी हुई सुन्दरी को देख ब्रजेश्वर ने पूछा–रानी जी क्या कहकर मैं आशीर्वाद दूं?

सुन्दरी ने उत्तर दिया–मै रानी जी नही हू।

ब्रजेश्वर ने देखा, अब तक वह जिसके साथ आड से बात कर रहा था, यह आवाज उसकी ही है। उसकी नही भी हो सकती है क्योंकि यह बात साफ समझ में आ रही है कि यह स्त्री अपने स्वर को बिगाड कर बातें कर रही है उसके मन में विचार उठा शायद यह देवी चौधरानी भयानक मायाविनी है इतनी माया न जानती तो स्त्री होकर भी डकैती करती? प्रकट रूप से उसने कहा–अभी जिनसे मैं बात चीत कर रहा था वे कहां हैं?

सुन्दरी ने कहा–तुमको आने की अनुमति देकर वे सोने चली गयी है। रानी से तुम्हें क्या जरूरत है।

ब्रज—तुम कौन हो?

सुन्दरी—तुम्हारी मालकिन।

मेरी मालकिन—ब्रज ने आश्चर्य से पूछा।

सुन्दरी–तुम क्या नही जानते कि अभी क्षण भर पहले तुमको मैंने बीस कानी कौड़िया देकर खरीद लिया है

ब्रज—यह तो सच है। तो तुमको क्या कहकर आशीर्वाद दूं ?

सुन्दरी–आशीर्वाद भी कई प्रकार के होते है क्या ?

ब्रज—स्त्रियो के लिए इस प्रकार का भेद है। सधवा को एक तरह से आशीर्वाद दिया जाता है विधवा को दूसरी तरह। पुत्रवती को······

सुन्दरी—'शीघ्र मर जाओ' यही कहकर तुम मुझे आशीर्वाद दो।

ब्रज—ऐसा आशीर्वाद मै किसी को भी नही देता। तुम्हारी परमायु एक सौ बर्ष की हो।

सुन्दरी—मेरी उम्र है पच्चीस वर्ष की। अठहत्तर वर्ष तक लगातार तुम मेरे लिए रसोई पकाओगे ?

ब्रज–पहले एक दिन तो पकालूं। यदि खा सकोगी तो सम्भव है अठहत्तर वर्ष तक पकाता रहूँ।

सुन्दरी—तो बैठो, कैसी रसोई पका सकते हो बताओ।

ब्रजेश्वर तब उस कोमल गलीचे पर बैठ गया।

सुन्दरी ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

ब्रज—यह तो तुम सब लोग जानती ही हो। मेरा नाम है ब्रजेश्वर। तुम्हारा नाम क्या है। गला इतना मोटा व भारी बनाकर बातचीत क्यों कर रही हो ? तुम क्या कोई जानी-पहचानी स्त्री हो ?

सुन्दरी—मैं हूं तुम्हारी मालकिन—मुझे तुम 'आप' 'महाशया' 'जो आज्ञा' कहकर सम्बोधन करना।

ब्रज—जो आज्ञा ऐसा ही होगा, आपका शुभ नाम ?

सुन्दरी—मेरा नाम है पाच कौड़ी। किन्तु तुम मेरे भृत्य हो, मेरा नाम तुम ले नही सकते, वरन् कहो तो मै भी तुम्हारा नाम न लूं।

ब्रज—तो क्या कहकर पुकारने से मै 'जो आज्ञा' कहूँगा ?

पाचकौड़ी—मैं रामधन कहकर तुमको पुकारूंगी, तुम मुझे मालकिन ठकुरानी कहकर पुकारना। अब तुम अपना परिचय दो—मकान कहा है ?

बृज—बीस कौडियों से खरीद चुकी हो—इतना परिचय लेने की अब जरूरत क्या है ?

पाचकौडी—अच्छा भले ही तुम न बताओ। रंगराज से पूछने पर जान जाऊँगी। तुम राढी हो या वारेन्द्र या वैदिक ?

बृज—मेरे हाथ का बनाया भात तो खाइयेगा ही, जो भी क्यों न होऊँ।

पाँचकौडी—तुम यदि मेरी श्रेणी के न होगे तो तुमको दूसरा काम दूंगी।

बृज—दूसरा काम कैसा ?

पाँचकौडी—जल भरोगे, लकड़ी चीर दोगे, काम की कमी क्या है ?

बृज—मैं हूँ राढी।

पाँचकौडी—तो मेरे लिए जल लाना पड़ेगा, लकड़ी काटना-चीरना पडेगा। मैं हूँ वारेन्द्र। तुम हो राढी—कुलीन हो या वंशज !

बृज—इस बात की जरूरत तो विवाह सम्बन्ध के ही लिए पड़ती है। क्या कोई संबंध होने वाला है ? मैं तो विवाहित हूँ।

पाँचकौडी—विवाहित हो ? कितने ब्याह कर चुके हो ?

बृज—जल भर लाना पड़ेगा तो वही करूँगा—किंतु यह सब मैं नहीं बताऊंगा।

तब पाचकौडी ने देवी रानी को बुलाकर कहा—रानी जी, यह ब्राह्मण महाराज बहुत ही पोंगा है। किसी बात का उत्तर नही देता।

निशि ने दूसरे कमरे से उत्तर दिया—बेंत लगाओ। तब देवी की एक परिचारिका झट से एक लचकदार पतला बेंत पांचकौडी के बिछौने पर रखकर चली गई। पांचकौड़ी ने बेंत मिल जाने पर ढकहिया रूमाल के भीतर छिपे हुए मधुर अधरों को सुन्दर दातों से दबाकर बिछौने पर दो बार बेत पटक दिया। ब्रजेश्वर से कहा—देख लिया।

ब्रजेश्वर हँस पडा। बोला—आप लोग सब कर सकती हैं। अच्छा जो पूछिये, सभी बताऊँगा।

पाँचकौड़ी—तुम्हारा परिचय मुझे नहीं चाहिये ! परिचय लेने से भी क्या होगा ? तुम्हारा पकाया भोजन तो मैं खाऊँगी नहीं, तुम और कौन काम कर सकते हो बताओ ?

ब्रज—आज्ञा दीजिये।

पाँचकौडी—जल भरना जानते हो ?

ब्रज—नही।

पाँचकौड़ी—लकड़ी काट सकते हो ?

ब्रज—नही ।

पाँचकौडी—बाजार से सौदा खरीद लाना जानते हो ?

ब्रज—थोड़ा-बहुत !

पाचकौडी—थोडा-बहुत से काम न चलेगा। पंखा झलना जानते हो ?

ब्रज—जानता हूँ।

पाँचकौड़ी—तो यह चंवर ले लो ! जरा हवा झलो।

ब्रजेश्वर चंवर लेकर हवा झरने लगे—पांचकौड़ी ने कहा—अच्छा तुम एक काम करना जानते हो ? पैर दाव सकते हो ?

ब्रजेश्वर का यह दुर्भाग्य था। पाचकौड़ी का मुखरा देख वे भी एक हल्का सा मजाक कर बैठे। डाकुओं की इन नेत्रियों को किसी तरह प्रसन्न कर छुटकारा पा जायँ, यह अभिप्राय भी उनका था। इस कारण पांचकौड़ी की बात के उत्तर मे उन्होने कहा—आप जैसी सुन्दरियों का पैर दबाने में तो सौभाग्य ही है।

"तो जरा पैर दाबो", कहकर तुरन्त ही पाँचकौडी ने आलता से रगा हुआ अपना पेर ब्रजेश्वर की जाघ पर रख दिया।

ब्रजेश्वर बेबस थे—आप ही पेर दबाने का निमंत्रण ले चुके थे, क्या करते ? इस कारण ब्रजेश्वर ने दोनो हाथो से पैर दबाना शुरू किया। मन मे सोचने लगे—यह अच्छा नही हो रहा है, इसका प्रायश्चित्त करना पडेगा। किसी तरह यहां से मुक्ति पाऊँ तो कल्याण हो।

तब नटखट पाँचकौडी ने पुकारा—रानी जी ! एक बार इधर आइये।

देवी के आने की आहट ब्रजेश्वर को सुनाई पड़ी। उन्होंने पैर हटा दिया। पांचकौड़ी ने हसते हुये कहा—यह क्या, क्यों छोड़ रहे हो, दाबो ?

इस बार पांचकौड़ी ने अपने स्वाभाविक स्वर में बात कही थी। ब्रजेश्वर ने बहुत ही विस्मित होकर कहा—यह क्या ? तुम ! सागर यहाँ ?

पांचकोडी बोली—हा मैं हूं सागर ! गंगा नही, जमुना नही—झील नहीं, नहर नही—साक्षात् सागर हूं । तुम्हारा कितना दुर्भाग्य है ! है न ! जब तुमने पराई स्त्री समझा था, तब बहुत ही प्रसन्न होकर पैर दाब रहे थे, और अब घर की अपनी स्त्री होकर पैर दबाने को मैंने कहा था तब तुम क्रोध से बडबड़ाते हुए चले गये थे । जाने दो, अब मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई तुमने मेरा पैर दाब दिया । अब तुम मेरे मुँह की तरफ नजर उठाकर देख सकते हो, मुझे त्याग मत करो । अपने पैरों के पास रक्खो—अब तुम जान गये, मै असल ब्राह्मण की बेटी हूँ ।

सातवाँ परिच्छेद

व्रजेश्वर कुछ देर तक विह्वल से हो गये । अन्त मे पूछा—सागर ! तुम यहाँ कैसे ?

सागर ने कहा—साकर के पतिदेव ! तुम यहाँ क्यो ?

व्रज०—यह क्या बात है ? मैं तो हूँ कैदी, तुम भी क्या कैद कर लायी गई हो ? मुझे डाकू पकड़ लाये हैं, तुमको भी क्या पकड ले आये हैं ?

सागर—मैं बन्दी नहीं हूं । मुझे कोई पकड नही लाया है । मैंने स्वेच्छा से देवी रानी की सहायता ली है । तुमसे पैर दबवाने की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये ही देवी रानी की शरण में आई हूँ ।

तब तब निशि आ गई । व्रजेश्वर ने उसके वस्त्रालङ्कारों का अपूर्व ठाटबाट देख समझा कि यही देवी चौधरानी हैं । सम्मान मे व्रजेश्वर उठ खड़े हुये । निशि ने कहा—स्त्री डाकू भी हो तो उसका इतना सम्मान न करना चाहिये-आप बैठिये । अब आपने समझा कि हमने आपके बजरे पर क्यों डाका डाला था । अब सागर की प्रतिज्ञा पूरी हो गई । अब आपकी हमें कोई जरूरत नही है । आप अपनी नाव लेकर लौट जायें तो कोई रोकेगा नहीं । आपका सारा सामान-असबाब कोई तिल भर भी नही लेगा, सब आपके बजरे पर वापस भेज दे रही हूं । किंतु

यही एक कौड़ी—यही एक मुँहजली सागर, इसका क्या होगा? यह क्या अपने बाप के घर लौट जायगी या आप इसे ले जाइयेगा? याद रक्खें, आप इसके बीस कौडी से खरीदे हुए गुलाम हैं।

आश्चर्य पर आश्चर्य। ब्रजेश्वर विक्षिप्त हो गया। तो सभी डकैतियाँ बनावटी है, ये लोग डाकू नही हैं। ब्रजेश्वर बहुत सोचता रहा, अन्त मे बोला—तुम लोगों ने तो मुझे मूर्ख बना दिया। मैंने सोचा था कि देवी चौधरानी के दल ने मेरे बजरे पर डाका डाला है।

तब निशि बोली—सच ही देवी चौधरानी का ही यह बजरा है। यह भी सत्य है कि देवी रानी ही डकैती करती है—बात खतम भी न हो पायी थी कि बृजेश्वर बोल उठा - देवी रानी सचमुच ही डकैती करती है तो क्या आप देवी रानी नही है?

निशि—मैं देवी नही हूँ, आप यदि उन्हे देखना चाहे तो वे दर्शन दे भी सकती हैं। किन्तु मैं जो बात कह रही थी पहले उसे सुनिये। हम लोग सचमुच ही डकैती करती हैं, किन्तु आपको लूटने का अन्य कोई उद्देश्य नही था, केवल सागर की प्रतिज्ञा की रक्षा करनी थी। अब सागर घर किस तरह जायगी? प्रतिज्ञा तो पूरी हो चुकी।

बृज—आयी कैसे थी?

निशि—रानी जी के साथ।

बृज—मैं भी तो सागर के मायके गया था—वहाँ से आ रहा हूँ। कहां, वहाँ तो रानी जी को मैंने नही देखा।

निशि-रानी जी आपके आने के बाद वहाँ गयी थीं।

बृज—तो इसी बीच इतनी जल्दी यहाँ कैसे आ गयी?

निशि—हमारी नाव आपने देखी तो है? पचास डांड़ उसमें लगते है।

बृज-तो आप ही लोग सागर को नाव पर चढ़ाकर वहाँ पहुँचा आइये न?

निशि—इस काम में जरा अड़चन है। सागर किसी से भी कुछ कहे बिना रानी के साथ चली आयी है। अब किसी अन्य व्यक्ति के साथ लौट कर जाने से सभी पूछेंगे—तू कहाँ चली गयी थी! आपके साथ लौटने से कोई प्रश्न ही न उठेगा।

वृज—ठीक है, यही होगा। आप कृपा पूर्वक नाव खोलने की आज्ञा दे दें। ''दे रही हू'' कहकर निशि वहा से खिसक गयी।

तब सागर को एकान्त मे पाकर वृजेश्वर बोला–सागर तुमने ऐसी प्रतिज्ञा क्यों की थी?

मुंह पर आँचल डालकर–इस बार ढकहियां रूमाल नहीं–कपडे का जितना भाग हाथ में आ गया, उसी से मुंह ढककर सागर रोने लगी–वही बकवादिन सागर सिसक-सिसक कर, कांप-कापकर, चुपके चुपके देर तक रोती रही। इसलिए कि देवी जी कहीं सुन न ले।

रुलाई बन्द होने पर बृजेश्वर ने पूछा—सागर! चुपके-चुपके तुमने मुझे बुलाया क्यों नहीं? एक बार बुलाने से ही सब झगड़ा मिट जाता।

सागर ने कष्ट से रुलाई सँभालते हुये आँखे पोछ कर कहा—भाग्य मे जो बदा है उसे भोगना था, किन्तु यदि मैंने नही बुलाया तो तुम ही क्यों नही आ गये?

ब्रज—तुमने मुझे निकाल बाहर किया था–बिना बुलाये मै कैसे लौटता?

इस तरह बातचीत हो चुकने पर ब्रजेश्वर बोला—सागर तुम डाकुओं के साथ कैसे चली आयी?

सागर बोली—देवी नाते में मेरी बहन लगती हैं, पहले की जान-पहचान थी। तुम्हारे चले आने पर वह मेरे पिता के घर आ पहुँची। मुझे रोते देखकर उसने कहा—रोती क्यो हो बहन, तुम्हारे सांवले चाद को मैं बांधकर ला दूंगी। मेरे साथ तुम दो दिनो के लिए चलो। इसीलिए मैं आ गयी। देवी के ऊपर पूरा विश्वास करने का एक विशेष कारण है। तुम्हारे साथ में भाग कर चली जा रही हूँ, यह बात मैं नौकरानी से बता आयी हूँ। तुम्हारे लिये मैंने ये सब गड़गड़ा सटाका आदि का बन्दोबस्त कर रखा है—एक बार तमाखू पीलो तब चलना।

ब्रजेश्वर ने कहा–कहां, जो मालकिन है वह तो कुछ भी नहीं बोलीं।

तब सागर ने देवी को पुकारा, देवी नही आयीं। निशि आ गई।

निशि को देखकर ब्रजेश्वर बोला—अब आप नाव खोल देने का हुकुम दे देतीं तो मैं तुरन्त चल देता।

निशि—यह नाव तुम्हारी ही है। किन्तु देखो, तुम रानी के बहनोई हो–नातेदार को अपने यहाँ पाकर भी हमने यथोचित सत्कार नही किया, यह हमारे लिये खेद की बात है। हम डाकू है तो क्या हममे भारतीय आतिथ्य-सत्कार नही है ?

व्रज—आप क्या करना चाहती हैं ?

निशि—पहले आप आराम से इधर आकर बिराजें।

निशि ने मसनद की ओर इशारा कर दिया। व्रजेश्वर केवल गलीचे पर बैठे थे, बोले–क्यों मैं अच्छी तरह बैठा तो हूँ।

तब निशि ने सागर से कहा—बहन; अपने देवता को तुम्हीं उठाकर बैठाओ। जानती ही हो। हम परायी चीज नहीं छूतीं। फिर हँसकर—सोना चाँदी छोड़कर।

व्रज—तो मैं क्या पीतल कासे के ढेर मे समझा गया हूँ।

निशि–मैं तो यही समझती हूं, पुरुष-स्त्रियों के लिये धातु के बरतनो के ही समान होते है। उनके न रहने से घर-गृहस्थी नही चलती; इसीलिए उन्हे रखना पडता है। बात-बात मे वे जूठे हो जाते है; मांज-धोकर घर मे उटाकर रखते-सँजोते प्राण आकुल रहते है, ले बहन सागर अपना लोटा, कटोरा हटा–कौन जाने यह भी जूठे हो जायँ।

व्रज—एक तो पीतल कांसा–उनमे भी लोटा-कटोरा। गगरा व गंगासागर जैसा भी गिने जाने योग्य क्या मैं नही हूँ ?

निशि—भाई, मै तो वैष्णवी हूँ, धातु के बरतनों से मेरा कोई सरोकार नही रहता–मेरी दौड मिट्टी के बरतनो तक रहती है। धातु के बरतनो का हाल सागर से पूछो।

सागर—मैं ठीक बात जानती हू। पुरुष बरतनों में घड़ा है। हरदम अन्तः शून्य रहता है, हम है गुणवती, इसीलिये शून्य कलश में जल भर कर उसे पूर्ण कुम्भ बना देती है।

निशि–तूने ठीक ही कहा है–इसीलिये स्त्री गले मे घडा बाँध संसार सागर में डूब मरती है—ले बहन, अपने घड़े का उठा कर चौकी पर स्थापित कर दे।

ब्रज—कलश स्वतः ही ससम्मान अपने आसन पर जा रहा है।

यह कहकर ब्रजेश्वर आप ही मसनद पर जा बैठे। हठात् दोनों ओर से दो परिचारिकाएँ—सुन्दरी और युवती वस्त्रालंकारो से सुसज्जित—दो सोने की मूठ-वाली चामरें हाथ मे ले वृजेश्वर के दोनों ओर आ खडी हुईं। वे हवा झलने लगी। तब निशि ने सागर से कहा—जा, अब अपने पति के लिए अपने हाथ से तमाखू चढा ला।

सागर ने फुर्ती से सुनहले गड़गड़े पर से चिलम लेकर कस्तूरी की सुगन्ध से सुवासित तमाखू भरकर गड़गड़े पर रख दिया। वृजेश्वर बोला—हुक्के मे नल दूसरा लगाकर मुझे दो।

निशि बोली—आप शका न करें—वह जूठा नही है। किसी ने कभी उस पर तमाखू नही पी। हममे से कोई तमाखू नही पीती।

ब्रज—यह क्या? तो फिर यह गडगडा कहां से आया?

निशि—देवी के ठाट-बाट मे हर प्रकार के सामान उपस्थित रहते हैं।

वृज—*भले ही यह बात हो जिस समय आया तब भी उसमें तमाखू भरी* थी—उसे कौन पी रहा था?

निशि—कोई नही! हुक्का सदा भरा रखना भी दिखावा है, दूँकानदारी है। वह गड़गड़ा उसी दिन निकाला गया था—तमाखू भी उसी दिन खरीद कर लाई गयी थी—सागर के पति आ रहे है उनके सम्मान के लिए। ब्रजेश्वर ने नली का मुँह जाचकर सोचा—जूठा नही है, ऐसा ही जान पड़ता है। तब व्रजेश्वर धूम्रपान के अनुपम सुख मे निमग्न हो गये। निशि ने सागर से कहा—तू मुँहजली, अब खड़ी-खडी क्या कर रही है? हुक्के की नली मुँह में लेने के बाद उसके सामने स्त्री परिवार पर कही पुरुष का मन जमता है। जा, तू दो-चार बीड़े पान तो लगा ला। देख, अपने हाथ से ही पान लगाकर लाना—दूसरे का लगाया नहीं—यदि तुझसे हो सके तो तू भी कुछ दवा सेवन करले।

सागर—अपने ही हाथ का लगाया पान रखा है—दवा जानती तो मेरी यह गति क्यों होती?

यह कहकर सागर चन्दन-कपूर इत्र-गुलाब से सुगन्धित पान की गिलौरियाँ

सोने के बिलहरे में भरकर ले आयी। तब निशि ने कहा—अपने पति को तूने बहुत अनाप-सनाप बातें कह दी हैं, कुछ जलपान के लिये ले आ।

ब्रजेश्वर सकपका कर बोले—अरे राम ! इतनी रात गये जलपान ! इसके लिए मुझे माफ करो।

किन्तु किसी ने उनकी बात नही सुनी। सागर ने जल्दी-जल्दी एक दूसरे कमरे में झाड़ू लगाकर उसे साफ किया, जल डाल उसे पोंछ डाला, एक मोटा गलीचा लाकर बिछा दिया। उस पर चार-पाँच स्वर्णथालो मे तरह-तरह के व्यंजन सजा, लाकर रखे। सोने के पात्र में उत्तम सुगन्धित शीतल जल रखा। तयारी पूरी जान निशि ने ब्रजेश्वर से कहा—चौका ठीक हो गया है, आप कृपा करे ! ब्रजेश्वर ने भीतर झांककर देखा तो घबड़ाकर निशि के सामने हाथ जोड दिये। बोले—मेरे बजरे पर डाका डालकर तुमने मुझे कैद किया है। वह अत्याचार तो सह लिया, किन्तु इतनी रात मे यह अत्याचार तो न सहा जायगा। दोहाई है।

स्त्रियो ने माफी नही दी। निदान, ब्रजेश्वर ने जाकर कुछ खा लिया। तब सागर ने निशि से कहा—ब्राह्मण खिलाने के बाद कुछ दक्षिणा दी जाती है। निशि ने कहा—दक्षिणा रानी स्वय देगी, आप इधर आये, रानी जी के दर्शन करा दूं। यह कहकर निशि ब्रजेश्वर को अपने साथ दूसरे कमरे मे ले गई।

आठवाँ परिच्छेद

निशि ब्रजेश्वर को अपने साथ देवी के शयनकक्ष मे ले गई। ब्रजेश्वर ने देखा शयनकक्ष राजदरबार की तरह करीने से सजा हुआ है। सोने से मढा एक छोटा सा पलंग, जिसमे मोती की झालरे झूल रही है, पडा है किन्तु ब्रजेश्वर की दृष्टि इन सब की ओर नही थी। इतने ऐश्वर्य की अधिकारिणी सुप्रख्यात देवी को देखने के इच्छुक वे थे। उन्होने देखा कि एक कोने मे एक बिना आसन

की चौकी पर आधा घूँघट काढे एक स्त्री बैठी है। निशि और सागर में बृजेश्वर ने जैसी चंचलता देखी थी, इसमें वह बिल्कुल ही नहीं है। यह तो अत्यंत स्थिर है, धीर है, उसकी दृष्टि नीचे की ओर है, लज्जा से नतमुख बैठी है। निशि और सागर, विशेषत: निशि रत्नालंकारों से सजी-धजी है, बहुमूल्य वस्त्र पहने है—किंतु यह तो एकदम सादगी से बैठी है। बृजेश्वर के साथ भेंट होने की आशा से देवी ने बहुमूल्य वस्त्रालंकारो से अपने को सजा लिया था, यह हम पहले ही बता चुके हैं। किन्तु भेंट का समय आ जाने पर देवी ने उन सबको उतार दिया। साधारण वस्त्र पहिन लिये, हाथ में केवल सादी सोने की चूड़ी रख वे बृजेश्वर की प्रतीक्षा कर रही थी। पहले निशि के परामर्श से देवी भ्रम मे पड गयी थीं। बाद में अपने आप ही ग्लानि होने लगी—छि! छि! छि! यह मैने क्या किया! ऐश्वर्य का फंदा गले में डाल लिया! यह सोच उन्होने आप वेश बदल दिया।

बृजेश्वर को भीतर पहुँचा कर निशि चली गई। कमरे में बृजेश्वर के पैर रखते ही देवी उठ खडी हुईं, बृजेश्वर को प्रणाम किया। देवी को देख बृजेश्वर तो सन्नाटे में आ गये। यह कौन? किसने प्रणाम किया। देवी तब बृजेश्वर के सामने खड़ी हो गयी। बृजेश्वर ने देखा, यथार्थ ही देवी-मूर्ति सामने है। याद आने लगा मानो पहले कभी उसे देखा था? अवश्य बृज ने एकबार ऐसी ही मूर्ति देखी थी। उस समय उसमें बालिका सुलभ माधुर्य प्रचुर था। बृजेश्वर भी यौवन की पहली सीढ़ी पर थे! हाय यदि यह वही होती! इस मुख को देख बृजेश्वर को वही मुख याद आ गया। किंतु उसने सोचा कि यह मुख वह तो नही है। उसकी इससे कुछ भी समता नही है! है तो अवश्य ही, कुछ तो है ही। बृजेश्वर अवाक् हो एक-टक् उसे देखने लगे। वह तो बहुत दिन हुए मर चुकी है—किंतु कभी-कभी दो मनुष्यों में ऐसी समता होती है कि एक को देखकर दूसरे की याद आ जाती है। यह भी कुछ ऐसा ही भ्रम है। बृजेश्वर के हृदय मे तूफान मचा था।। बृज ने ऐसा ही समझ लिया। किंतु उस सामंजस्य से हृदय भर आया—नेत्रों में आँसू भर आये, बाहर गिरे नही। इसलिए वे आँसू देवी देख न सकी। उन्हे देखने से आज बहुत बड़ा तूफान मच जाता। दोनों ही बादलों मे बिजली छिपी थी।

प्रणाम करके नेत्रों को नीचे ही किये देवी कहने लगी—मैंने आपको आज जबरदस्ती कैद करके बहुत बडा कष्ट दिया। मैंने ऐसा कुकर्म क्यों किया आप सुन चुके है ! मेरे अपराध को आप मन मे ठहरने मत दीजिये।

ब्रजेश्वर बोले—आपने मेरा उपकार ही किया है। अधिक बातें कहने की शक्ति ब्रजेश्वर में नही थी।

देवी ने फिर कहा—आपने कृपापूर्वक मेरा आतिथ्य ग्रहण कर लिया है, इससे मेरी मर्यादा बढी है। आप हैं कुलीन–आपकी मर्यादा की रक्षा करना मेरा कर्तव्य हैं। आप मेरे सम्बन्धी हैं। मैं जो आपको भेंट दे रही हूँ, उसे ग्रहण कीजिये।

ब्रज—स्त्री के समान कौन धन होता है ? आपने वही धन मुझे दिया है, इससे अधिक और क्या दीजियेगा ?

ऐ बृजेश्वर ! तुमने यह क्या कह डाला ? स्त्री के समान धन और नही है? तभी पिता-पुत्र ने मिलकर प्रफुल्ल को घर से निकाल बाहर किया था। क्यों ?

पलंग के पास एक चांदी की कलसी थी, उसे खींचते हुये देवी ने बृजेश्वर के समीप लाकर रख दिया, बोली—इसे ही आपको ग्रहण करन पड़ेगा।

बृज—आपके बजरे मे सोना चादी की इतनी भरमार है कि इस कलसी को लेने मे आपत्ति करने से सागर मुझे फटकारेगी। किन्तु एक बात है—

बात क्या है, देवी समझ गयी। बोली—मैं शपथपूर्वक कह रही हूं, यह चोरी डकैती की सम्पत्ति नही है। मेरे पास कुछ निजी सम्पत्ति है–आप सुन चुके होगे। इस कारण इसे ग्रहण करने में आप कोई सन्देह मत करें।

बृजेश्वर सहमत हो गए–कुलीन के लड़के, अध्यापक तथा पुरोहित के लिए बिदाई या भेंट ग्रहण करने में लज्जा की कोई बात नहीं थी–अब भी शायद नही है। कलसी बहुत भारी प्रतीत हुई, ब्रजेश्वर सहज ही में उसे उठा न सके। उसने कहा—यह क्या बात है ? यह कलसी ठोस सोने की बनी है क्या ?

देवी—खीचते समय इसके भीतर से आवाज हुई थी अतः ठोस होना तो सम्भव नहीं हैं।

ब्रज—यह तो ठीक है ? इसमें क्या है ?

कलसी मे हाथ डालकर ब्रजेश्वर ने उसमे से कुछ निकाल लिया। देखा मोहर। कलसी मोहरों से भरी है।

व्रज—इनको किस बरतन मे भर कर ले जाऊँ?

देवी—दूसरा बरतन किसलिये? यह आपकी ही है।

व्रज—क्या?

देवी—क्यो?

व्रज—कितनी मोहरे है!

देवी—तेतीस सौ।

ब्रज—तेतीस सौ मोहरे पचास हजार रुपये से अधिक मूल्य की है। सागर ने आपसे रुपये के बारे मे कुछ कहा है?

देवी—सागर के मुंह से सब सुन चुकी हूं, आपको पचास हजार रुपयो की विशेष आवश्यकता है।

ब्रज—वही आप दे रही है?

देवी—रुपया मेरा नही है, दान करने का अधिकार मुझे नही है। रुपया देवता का है, मेरे पास देवता की थाती है। मैं देवता की सम्पत्ति से ही आपको यह रुपया कर्ज मे दे रही हूँ।

ब्रज—मुझे रुपये की नितान्त आवश्यकता आ पडी है—सम्भवत चोरी डकैती करके भी यदि मै यह रुपया संग्रह कर लूं तो भी अधर्म न होगा, क्योकि इस रुपये के बिना मेरे पिता की मर्यादा नष्ट हो जायगी। मै यह रुपया ले लूंगा। किन्तु कब लौटाना पडेगा?

देवी—देवता की सम्पत्ति देवता को मिल जाने से ही काम बन जायगा। मेरी मृत्यु का समाचार सुनने के बाद, असल धन और सूद मे एक मोहर और मिलाकर देव सेवा मे खर्च कर दीजियेगा।

ब्रज—वह खर्च मेरा ही किया हुआ समझा जायगा। वह तो आपको धोखा देना हुआ। मैं इस बात से सहमत नही हूँ।

देवी—आपकी जिस तरह इच्छा हो, उसी तरह चुका दीजियेगा।

ब्रज—धन जुट जाने पर मैं आपके पास भेज दूंगा।

देवी—आपका कोई आदमी मेरे पास न आवे, आने भी नही पावेगा।

ब्रज—मैं स्वयं रुपया लेकर आ जाऊंगा ।

देवी—कहा लेकर आइयेगा ? मैं एक जगह नही रहती ।

व्रज—जहा आप बता देगी ।

देवी—दिन ठीक बता देने से मैं स्थान ठीक करके बता सकती हूं ।

वृज—मैं माघ-फागुन मे रुपया जुटा सकूंगा । किन्तु कुछ समय लेना अच्छा है । वैशाख मास मे रुपया दे दूंगा ।

देवी—तो वैशाख मास के शुक्लपक्ष की सप्तमी की रात्रि मे इसी घाट पर रुपया ले आइयेगा, सप्तमी का चन्द्रमा अस्त हो जाने के समय तक मैं यहीं रहूँगी । सप्तमी को चन्द्रास्त के बाद आने पर आप मुझसे भेट न कर सकेंगे ।

बृजेश्वर ने यह बात स्वीकार कर ली, तब देवी ने परिचारिकाओ को आदेश दिया, वे मोहरो का घडा नाव पर उठा ले गयी । बृजेश्वर भी देवी को आशीर्वाद देकर नाव पर जाने लगे । तब देवी ने रोकते हुये कहा—एक और बात बाकी है । यह तो मैंने कर्ज दिया है—आपकी भेट कहा दी ?

बृज—यह कलसी है भेट ।

देवी—वह आपके योग्य नही हुई । यथाशक्ति मर्यादा की रक्षा करूंगी ।

यह कहकर देवी ने अपनी अंगुली से एक अंगूठी निकाल ली । उसे लेने के लिए बृजेश्वर ने हँसते हुए हाथ पसार दिया । देवी ने उसके हाथ पर अगूंठी नही गिरायी-बृजेश्वर के हाथ को पकड लिया-स्वयं अंगूठी पहनाने के लिए ।

बृजेश्वर जितेन्द्रिय थे, किन्तु उनके मन मे एक हलचल मच गयी, जितेन्द्रिय ब्रजेश्वर उसे समझ नही पाये । शरीर रोमांचित हो गया-मन मे मानो अमृत स्रोत बह चला । जितेन्द्रिय ब्रजेश्वर हाथ खीच न सके । विधि का विधान कभी-कभी ऐसा बन जाता है कि ठीक समय पर स्वाभाविक काम भी भूल जाते हैं ।

उस मानसिक उथल-पुथल के बीच व्रजेश्वर की अंगुली मे देवी धीरे से अगूंठी पहनाने लगीं । उसी समय दो बूँद गरम जल व्रजेश्वर के हाथ पर टपक गया । व्रजेश्वर ने देखा, देवी की आखें और चेहरा आसुओ से भीग गये है । कैसे क्या हो गया, मैं नही कह सकता । ब्रजेश्वर तो जितेन्द्रिय थे, किन्तु उनके मन में न जाने कैसी उथल-पुथल मच गयी । वही पूर्वपरिचित चेहरा याद पड गया—शायद वह मुखमण्डल भी उस रात्रि मे ऐसी ही अश्रुधार से भीग गया था

उन आँखो के आँसू पोछना भी शायद याद आ गया। यही है वह, वही है यह, ऐसी हलचल वृज के मन मे पैदा हो गई। ब्रजेश्वर ने बिना कुछ सोचे समझे—किसलिए मैं नही जानता—देवी के कधे पर हाथ रख दिया। दूसरे हाथ से चिबुक पकड कर मुँह ऊपर उठाया—शायद वह मुखड़ा प्रफुल्ल की तरह ही दिखाई पडा। विह्वल होकर अश्रु सिक्त अधरो पर···ओः···छि! बृजेश्वर! फिर!

तब बृजेश्वर के शिर पर मानो बज्र गिर पडा। हाय! यह मैंने क्या कर डाला! यह क्या प्रफुल्ल है? वह तो दस वर्ष पहले मर चुकी है। बृजेश्वर हांफते हुए भाग कर एकदम नाव के ऊपर चले गये! "पकडो! पकडो कर्जदार भागा जा रहा है।" कहती हुई सागर उसके पीछे-पीछे दौडकर नाव पर चढ गयी। माझियो ने नाव खोल दी। ब्रजेश्वर तथा बृजेश्वर के दो रत्नाधारो—सागर और कलसी को उनकी नाव पर पहुँचा दिया।

इधर निशि ने देवी के शयनकक्ष मे जाकर देखा तो देवी नाव के तख्ते पर रो-रोकर लोटपोट हो रही है। निशि ने उसको उठाकर बैठाया—उसकी आँखो के आसू पोंछ डाले— उसे शान्त किया। तब निशि ने पूछा—मा! यही क्या तुम्हारा निष्काम धर्म है? क्या यही सन्यास है? भगवद् वचन कहां गया मा?

देवी चुप हो रहीं। निशि ने कहा—ये सब व्रत स्त्रियों के नही हैं। यदि स्त्रियों को उस राह पर चलना हो तो मेरी तरह बनना पड़ेगा। ब्रजेश्वर कही मुझे रुलाने के लिये हैं। मेरा ब्रजेश्वर और बैकुण्ठेश्वर एक ही हैं।

देवी ने आखे पोंछते हुए कहा—तुम यमराज के घर चली जाओ।

निशि ने कहा—मुझे कोई आपत्ति नहीं थी। किन्तु मेरे ऊपर यमराज का अधिकार नही है। तुम सन्यास छोड़ कर अपने घर जाओ।

देवी—वह पथ खुला होता तो मैं इस पथ मे नही फँसती। अब बजरा खोलने को कह दो। चारों पाल चढाये जांय।

तब वह जहाज सरीखा बजरा चार पाल फहराता हुआ पक्षी की तरह उड़ चला।

———

नवाँ परिच्छेद

व्रजेश्वर नाव पर आकर गभीर चिन्ता में डूब गये। सागर के साथ उन्होंने कोई बातचीत नही की। देखा कि देवी का बजरा पाल फहराता पक्षी की तरह उड़कर ओझल हो गया। तब बृजेश्वर ने सागर से कहा—वह बजरा कहाँ चला गया?

सागर ने कहा—यह तो देवी के अतिरिक्त और कोई नही जानता। इन बातो को देवी किसी का नही बताती।

बृज—देवी कौन है?

सा० देवी साक्षात् देवी ही है।

बृज—तुम्हारी कौन होती है?

सा०—बहन।

बृज—कैसी बहन?

सा०—अपने ही गात्र की।

बृजेश्वर फिर चुप हो गये। माझियो को बुलाकर कहा–तुम लोग उस बडे बजरे का साथ पकड़ सकते हो? माझियो ने जबाब दिया—किसमे सामर्थ है? वह तो नक्षत्र की तरह दौड रहा है। बृजेश्वर फिर चुप हो रहे। सागर सो गई।

भोर पहर ही बृजेश्वर बजरा खोलकर चल दिये।

सूर्योदय होने पर सागर ब्रजेश्वर के पास आकर बैठ गई। बृजेश्वर ने पूछा—देवी क्या डकैती करती है?

सा०—तुमको क्या समझ मे आता है?

बृज—सब कुछ तो डकैतों की ही तरह देख चुका हूँ–डकैती करना चाहे तो कर भी सकती है, यह भी मैंने देख लिया है। फिर भी विश्वास नही होता कि वह डकैती करती है।

सा०—क्यों विश्वास नही होता?

बृज—कौन जाने? लेकिन डकैती न करती तो फिर इतना धन वह कहां से पा जातीं?

सा०—कोई कहता है कि देवी को देवता के वरदान से इतना धन मिला है। कोई कहता है, जमीन के नीचे गड़ा हुआ धन उन्हें मिल गया है। कोई कहता है, देवी सोना बनाना जानती हैं।

ब्रज—देवी क्या कहती हैं ?

सा०—देवी कहती हैं कि एक कौडी भी मेरी नही है। सब धन किसी और का है।

ब्रज—पराया धन उन्हे इतना कहा मिल गया ?

सा०—यह मै नही जानती हूँ।

ब्रज—पराये धन के बल पर इतनी अमीरी करती हैं, धन का मालिक कुछ बोलता नही है ?

सा०—देवी कुछ भी अमीरी नही करती। मोटा अन्न खाती हैं, जमीन पर सोती हैं, मोटा कपडा पहनती हैं। कल तुमने जो कुछ देखा, वह सब केवल मेरे व तुम्हारे लिए था—दूकानदारी मात्र थी। तुम्हारे हाथ में वह क्या है ?

सागर ने ब्रजेश्वर के हाथ मे नई अँगूठी देख ली।

ब्रजेश्वर बोला—कल मैने देवी की नाव पर जलपान किया था, इसीलिए देवी ने मुझे यह अँगूठी भेट दी है।

सा०—देखूँ।

ब्रजेश्वर ने अँगूठी निकालकर उसे दे दी। सागर ने हाथ मे ले उसे घुमा-फिरा कर देखा। कहने लगी–इसमे तो देवी चौधरानी का नाम खुदा है।

ब्रज—कहां ?

सा०—भीतर–फारसी अक्षरों मे।

ब्रज—(पढ़कर) यह क्या ? यह तो मेरा नाम है—मेरी अंगूठी है ! सागर तुमको मेरी शपथ, तुम मुझे सच-सच बताओ। जल्दी बताओ यह देवी कौन हैं ?

सा०—तुम पहचान नही सके, इसमे मेरा क्या दोष है ? मैं तो पल मारते ही पहचान गयी थी।

ब्रज—कौन ? कौन ? देवी कौन है ?

सा०—प्रफुल्ल।

बृजेश्वर ने फिर कुछ नही कहा। सागर ने देखा कि बृजेश्वर को रोमाञ्च हो गया। उसके बाद वह गद्-गद् होकर—उमडते हुए भावो के सुख की तरंग मे गोते खाने लगे। मुख ओजपूर्ण था। शुभ्र विस्फारित नेत्र वह भी मदभरे. शरीर उन्नत, कान्ति एव स्फूर्तिमय हो गया। क्षण भर बाद ही सागर ने फिर देखा मानो सब कुछ बुझ गया। विषाद की कालिमा ने आकर मानो उस प्रभामय कान्ति पर अधिकार जमा लिया। बृजेश्वर गुमसुम बिना हिले-डुले, निमेषशून्य से खडे थे। सागर के मुख की ओर ताकते-ताकते बृजेश्वर ने आँखे बन्द कर ली। शरीर सन्न हो गया। ब्रजेश्वर सागर की गोद मे शिर रख कर लेट गये। सागर ने दुःखी हो बहुत पूछा किन्तु कुछ भी उत्तर नही मिला। एक बार ब्रजेश्वर के मुँह से निकला—तो प्रफुल्ल डाकू है!

दसवाँ परिच्छेद

बजेश्वर और सागर को बिदा कर देवी चौधरानी—हाय! कहाँ गया देवी का वह ऐश्वर्य? कहा है वह वेष भूषा, कीमती सुनहरे काम से बनी ढकहिया साडी, हीरा, मोती, पन्ना—सब कहाँ चले गये? देवी ने सब कुछ छोड दिया—सब एकदम लुप्त हो गया है। देवी ने केवल एक मोटा कपडा पहन रखा है, हाथ मे केवल कंगन शेष है। देवी बजरे के एक कोने मे तख्ते पर केवल एक टाट बिछा कर सो रही थी। वह नीद मे सो रही थी या नही, मैं कह नही सकता!

प्रात बेला मे यह देख कर कि बजरा अपेक्षित स्थान पर आ लगा है,देवी ने नदी मे उतर कर स्नान किया। स्नान करके भीगे वस्त्र ही पहने रह गयी—वही गाढे की धोती शरीर पर थी। ललाट और वक्ष पर गगा की पावन मिट्टी का लेप कर लिया—रूखे भीगे बालो को पीठ पर बिखेर दिया—उस समय देवी का जो सौन्दर्य निखर आया, वह पिछली रात की बहुमूल्य वेषभूषा, ठाटबाट, हीरा मोती, चाँदनी या राजसीपने के सौन्दर्य से सैकडो गुना अधिक था। कल देवी रत्नाभूषणो से लदी राजरानी की तरह दिखाई पड रही थी—आज गंगा की मिट्टी का शृंगार किये वही साक्षात् देवी प्रतीत हो रही है। जो स्वय सुन्दर है, वह मिट्टी को छोड़ हीरा मोती का कृत्रिम शृंगार क्यों करे?

देवी इस अनुपम वेष में अपने साथ एक स्त्री को लिये नदी के किनारे-किनारे चलने लगी—बजरे पर नहीं गयी। इस तरह बहुत दूर जाकर वह एक जंगल में प्रविष्ट हो गयी। इस कथानक मे बात-बात मे जंगलों का प्रसग आ रहा है—बात-बात में डाकुओं की भयानक चर्चा आ जाती है—इस से पाठक यह न सोचें कि इस आख्यान में किंचित मात्र भी अत्युक्ति है, अथवा जंगल या डाकुओं से हमें कोई प्रेम है। जिस समय की बात हम लिख रहे हैं, उस समय इस प्रदेश मे जंगलों की भरमार थी। अब भी अनेक स्थानों में भयानक घने जंगल हैं जिनमे से कुछ तो मैं स्वयं देख आया हूँ। हाँ डाकुओं का आतंक तो अब नही है। इतिहास के विद्यार्थी जानते हैं कि भारतवर्ष में डाकुओं का दमन करने के लिए मार्कुइस आव हेस्टिंग्स को कितना बड़ा युद्ध करना पडा था। पंजाब के युद्ध के पूर्व फिर कभी उतनी भीषण लडाई नही लड़नी पडी। इस अराजकता के युग मे डकैती ही शक्तिशाली लोगों का व्यवसाय था। जो लोग दुर्बल, गँवार या मूर्ख होते थे, वे ही लोग "भले आदमी" होते थे। डकैती उन दिनों कोई लज्जा या निंदा की बात नही थी।

जंगल के अन्दर प्रवेश करके देवी बहुत दूर चली गयी। एक पेड के नीचे पहुँच कर परिचारिका से देवी ने कहा—दिवा, तू यहा बैठ। मै आ रही हूँ। इस बन में बाघ भालू बहुत कम रहते हैं। आ जाने पर भी डरने की बात नहीं है। पहरे पर लोग तैनात हैं। यह कह कर देवी वहा से और भी घने जगल में प्रवेश कर गयीं। अत्यन्त निबिड़ जगल के बीच एक सुरंग है। उसमें सीढ़ियाँ बनी हुई है। जहाँ उतरना पड़ता है वहाँ अँधेरा है—पत्थर की बनी कोठरी है। पुराने समय में सम्भवतः वह देवालय रहा होगा—अब समय के फेर से उसके चारों तरफ मिट्टी गिर गयी है। इसी लिए उसमें उतरने के लिए सीढ़ियां बनाने की जरूरत पड गई है। देवी अँधियारी में सीढ़ी से उतर गयीं।

बस भूगर्भस्थ मन्दिर मे टिमटिमाता हुआ एक दीपक जल रहा था। उसके उजाले में एक शिवलिंग दिखाई पड़ा। एक ब्राह्मण उस शिवलिंग के सामने बैठकर उनकी पूजा कर रहा था। देवी, शिवलिंग को प्रणाम कर, ब्राह्मण से कुछ दूर बैठ गयीं। । पूजा सम्पन्न करके आचमन करने के पश्चात् ब्राह्मण देवी के साथ बातचीत करने लगा।

ब्राह्मण बोला—मा ! कल रात को तुमने क्या किया ? तुमने क्या डाका डाला है ?

देवी ने कहा—आपको क्या विश्वास होता है ?

ब्राह्मण बोला—कौन जाने ?

यह ब्राह्मण और कोई नही, हमारे पूर्वपरिचित भवानी ठाकुर है।

देवी बोली—कौन जाने ! क्या कहते हो ठाकुर ? आप क्या मुझे नही जानते। दस वर्षों से आज तक मैं इस दस्युदल के साथ घूमती रही। लोग जानते हैं तो भी, एक दिन के लिये भी यह काम मुझ से नही हुआ—इस बात को आप अच्छी तरह जानते है, तो भी कहते हैं, कौन जाने ?

भवानी—क्रोध क्यो करती हो ? हम लोग जिस अभिप्राय से डकैती करते हैं, उसको हम कोई बुरा काम नही समझते। ऐसा होने से एक दिन के लिए भी हम उसे नही करते। सम्भवत तुम भी इस काम को खराब नही समझती —क्योंकि, उस दशा मे इन दस वर्षो से·· ······

देवी—इस सम्बन्ध मे मेरा विचार बदलता जा रहा है। मै आपकी बातों से अब तक भूली हुई थी—अब भूलने वाली नही हूँ। परधन छीन लेना यदि बुरा नही है तो महापातक क्या है ? आप लोगों के साथ अब मैं कोई भी सम्बन्ध न रक्खूँगी।

भवानी—यह क्या ? जिस बात को इतने दिन मैं समझा चुका हूँ, उसे ही क्या तुमको फिर समझाना पड़ेगा ? यदि मै इन सब डकैतियों के धन की एक कौडी भी लेता, तो अवश्य ही महापातक होता। किंतु तुम तो जानती ही हो कि केवल दूसरों को देने के लिए मैं डकैती करता हूं, जो धार्मिक है, वह सन्मार्ग मे रहकर धनोपार्जन करता है। जिसकी धनहानि होने से भरण पोषण में कष्ट होगा, रंगराज या मैंने कभी उसका एक पैसा भी नही लिया। जो धोखे-बाज दगाबाज हैं, जिसने पराया धन छीनकर या धोखा देकर लिया है, उसके ऊपर हम लोग डकैती करते हैं, लूटने के बाद एक पैसा भी हम नही लेते, जिस का धन डकैत ले गये है उसे बुलाकर दे देते है ? इन सब बातों को क्या तुम नहीं जानती ? देश है अराजक, शासन व्यवस्थाहीन, जहां दुष्टों का दमन नही होता, जो जिसको पा जाता है छीन कर खा जाता है। हम लोग तुम को रानी

बना कर राज्य का शासन-कार्य चला रहे है। तुम्हारे नाम से हम लोग दुष्टो का दमन करते है शिष्टो का पालन करते है, यह क्या अधर्म है ?

देवी—राजा, रानी, जिसको बनाइयेगा, वही बन जायगी। मुझे आप छुटकारा दें—इस रानीगिरी मे अब मेरा मन नही लगता।

भवानी—और किसी को भी यह राज्य शोभा नही देता, और किसी के पास अतुल ऐश्वर्य भी नही है—तुम्हारे धनदान के कारण सभी तुम्हारे वश मे है।

देवी—मेरे पास जो धन है, सभी मैं आप को दे रही हूँ, उन रुपयों को मैं जिस तरह खर्च करती थी आप भी उसी तरह करेंगे। मैंने काशी जाकर रहने का विचार किया है।

भवानी—केवल तुम्हारे धन के ही कारण क्या सभी तुम्हारे वश मे है ? तुम सुन्दरता मे यथार्थ राजरानी हो—गुणों मे यथार्थ राजरानी हो। बहुतेरे तुम को साक्षात् भगवती के रूप मे जानते है—क्योंकि तुम हो सन्यासिनी, माता की तरह तुम दूसरो की मगल कामना करती हो, अकातर भाव से धनदान करती हो, इसके सिवाय तुम भगवती की तरह रूपवती हो, इसीलिये हम लोग तम्हारे नाम से यह राज्य-शासन करते है—नही तो हम लोगो को कौन मानता ?

देवी—इसलिए लोग मुझे डकैतिनी के ही रूप में जानते हैं। यह अपयश चले जाने पर भी मिटने वाला नही है।

भवानी—अपयश क्या ? इस वरेन्द्र भूमि मे आजकल कौन ऐसा है, जो इस नाम से अपरिचित है, इस नाम से लज्जित है ? किंतु छोडो इस बात को—धर्माचरण मे सुख्याति-कुख्याति ढुंढने की जरूरत ही क्या है ? सुख्याति की कामना करने से ही फिर कर्म निष्काम कहां हुआ ? तुम यदि कुख्याति से डरती हो तो तुमने अपने ही विचारा दूसरो के लिये नही सोचा। आत्मविसर्जन कहां हुआ।

देवी—मैं आपके साथ तर्क करके पार नही पा सकती—आप हैं महामहोपाध्याय, मेरी स्त्री-बुद्धि मे जो बात आ रही है, वही कह रही हूँ—मैं इस रानीगीरी से अवसर लेना चाहती हूं। यह अब मुझे अच्छी नही लगती।

भवानी—यदि अच्छी नहीं लगती तो कल तुमने रंगराज को डकैती करने

के लिये क्यो भेजा था ? यह बात तो मुझसे छिपी नही है·······...

देवी—यदि बात छिपी नही है तो आप अवश्य ही यह बात भी जानते हो गे कि कल रंगराज ने डकैती नही की-डकैती का सिर्फ प्रदर्शन किया था।

भवानी—क्यों ? इसे मैं नहीं जानता इसलिए पूछ रहा हूँ।

देवी--एक आदमी को पकड़ लाने के लिए।

भवानी—वह आदमी कौन है ?

देवी के मुख से वह नाम निकलने मे कुछ रुकावट सी हुई—किंतु नाम के बताये बिना काम चलने वाला नहीं था—भवानी के साथ दुराव न चलेगा। निदान इस कारण देवी ने कहा—उनका नाम है ब्रजेश्वर राय।

भ०–मै उसको अच्छी तरह पहचानता हूं। उससे तुम्हारा क्या प्रयोजन है ?

देवी—कुछ देने का प्रयोजन था। उनके पिता इजारादार के हाथ कैद हुए थे। कुछ धन देकर ब्राह्मण की मैने रक्षा की है।

तुमने अच्छा नही किया। हरवल्लभ राय अत्यन्त पाखण्डी है–निरर्थक ही उसने अपनी समधिन को जाति-च्युत कर दिया था—उसका नष्ट हो जाना ही अच्छा होता।

देवी सिहर उठी। बोली—सो कैसे ?

भ०—उसकी एक पुत्रवधू के कोई नही था। केवल विधवा मा थी। हर-वल्लभ ने उस बेचारी को बाग्दी होने का कलक लगाकर; बहू को अपने घर से निकाल बाहर किया। दु:ख से बहू की मा मर गयी।

दे०—और वह बहू ?

भ०—सुनता हूँ कि खाना न मिलने के कारण वह भी मर गयी।

देवी—उन सब बातो ं की हमें जरूरत क्या है ? हम लोगों ने परहितव्रत लिया है, जिसको दु:खी देखेगे, उसका ही दु:ख दूर करेंगे।

भ०—इसमे कोई हानि नही है। किंतु इन दिनों बहुत से लोग विपत्ति-ग्रस्त हैं–इजारादारों के ऊधम से उनका सर्वस्व चला गया। कुछ-कुछ पा जाने से वे लोग भोजन पाकर शरीर-रक्षा करते। शरीर मे बल होते ही वे लोग लाठी ले कर अपने-अपने हक की रक्षा कर सकेंगे। शीघ्र एक दिन दरबार बुलाकर उनकी रक्षा करो।

दे०—तो श्राप प्रचार करदे कि इसी जगह् श्रगले सोमवार को दरबार लगेगा।

भ०—नही। यहाँ श्रब तुम्हारा रहना नही होगा श्रग्रेजों को पता चल चुका है कि इस समय तुम इस प्रदेश मे हो। इस बार पाँच सौ सिपाहियों को साथ ले वह तुम्हारा पता लगाने श्रा रहा है। इसलिये यहाँ दरबार न लगेगा। बैकुण्ठपुर के जगल में चली जाश्रो।

दे०—श्रब मैं जारही हूँ। किंतु फिर मैं यह काम करूँगी या नही इसमे सन्देह है, इसमे मेरा मन श्रब नही लगता।

यह कह कर देवी उठ पडी। फिर जगल को पार कर वह बजरे पर चढ गयी। बजरे पर चढ रंगराज को बुलाकर चुपके-चुपके श्रादेश दिया—श्रागामी सोमवार को बैकुण्ठपुर के जगल मे दरबार लगेगा। इसी क्षरण बजरा खोल दो। वहाँ ही चलो–बरकंदाजो को खबर दे दो, देवीगढ से होते हुए चले–रुपया लेकर चलना पडेगा। मेरे पास रुपया श्रधिक नही है।

तब पल भर में बजरे के मस्तूल पर तीन-चार छोटे-बडे पाल हवा में फूलने लगे। नाव बजरे के सामने लाकर उमके साथ बाध दी गयी। उसमे साठ जवान डाँड लेकर बैठ गये श्रौर 'रानी की जय' कहकर खेना शुरू कर दिया—वह जहाज की तरह बजरा तब तीर की गति से दौड चला। इधर यह दिखाई पडा कि बहुसख्यक पथिक या बाजार जाने वालो की तरह दिखाई पडने वाले लोग नदी के किनारे जगल के भीतर से बजरे के दौड़ते हुए चले जा रहे है। उन लोगो के हाथ मे केवल एक-एक लाठी थी–किंतु बजरे के भीतर बहुत सी ढालें बर्छें, बन्दूकें थी। ये लोग देवी के बरकन्दाज सैनिक थे।

———

ग्यारहवाँ परिच्छेद

सोमवार को प्रातःकालीन सूर्य किरणों से प्रकाशित उसी घने जंगल के भीतर देवी रानी का दरबार लगा है। उस दरबार मे कोई मुकदमे श्रादि नही

होते थे। इस अनोखे दरबार मे एक ही काम होता था—मुक्तहस्त से दान।

एकदम सुनसान जगल है; किंतु उसके भीतर कोई तीन सौ बीघा जमीन खूब साफ की गई है। बडे-बडे वृक्ष नही काटे गये हैं। उनकी छाया मे लोग खडे होगे। उस साफ भूमिखण्ड में लगभग दस हजार व्यक्ति एकत्र हुये हैं। एक बडा शामियाना पेडो के तनो मे बाँध कर खडा किया गया है। उसके नीचे बडे-बडे मोटे-मोटे चाँदी के डडो के ऊपर एक किमखाव की चदरछत टागी गई है—उसमे मोती की झालरें लगी है। उस चदरछत के नीचे चन्दन की लकडी की चौकी पडी है जिस पर एक बडा मोटा गलीचा बिछा है। गलीचे के ऊपर १ छोटा सा चाँदी का सिहासन है। सिंहासन पर मसनद लगी है उसमें भी मुक्ता की झालरे झूल रही है। देवी की वेशभूषा का आज विशेष ठाठ हैं। बेशकीमती साडी पहने हुए है। साडी मे कढे हर फूल के बीच एक-एक हीरा जडा है। हर अ ग रत्नाभूषणो से लदा है। कही-कही पर किसी अ ग का उज्ज्वल गौर-वर्ण दिखाई दे जाता है। गले मे मोतियो के हार इतने अधिक है कि वक्ष का वस्त्र तक नही दिखाई पडता। सिर पर रत्नजटित मुकुट शोभा दे रहा है। देवी ने आज शरद्काल मे होने वाले देवीप्रतिमा के शृंगार की तरह अपने को सजा रखा है। यह सब है देवी का राजसी ठाठ। अगल-बगल मे चार सजी-धजी युवतिया सुनहरी मूठ वाले चामरो से हवा झल रही हैं। उनके पास और सामने अगणित सिपाही बहुत ही शानदार पोशाक पहिने चादी के मुगरे कधे पर हाथ में ताने खडे है। बरकंदाजो की कतार की शोभा तो अपूर्व है। ५ सौ बरकंदाज सैनिक देवी के सिंहासन के दोनों ओर कतार बाँध कर खडे हो गये। शिर पर कामदार लाल पगडियां, शरीर पर लाल अँगरखे, लाल रग की ही धोती सभी सैनिक पहने हैं, कमर मे कछनी बँधी है, पैरो मे लाल नगौरा जूता है। हाथ में ढाल और बर्छी है। चारों ओर लाल झडिया फहरा रही है

देवी रानी सिंहासन पर आकर आसीन हो गयी। उन दस हजार उपस्थित लोगो ने एक ही साथ "देवी रानी की जय" का घोष किया। उसके बाद दस विशेष सुसज्जित युवको ने आगे बढ कर मधुर स्वर मे देवी के अभिनन्दन में एक गीत गाया। उसके बाद उन दस हजार निर्धन याचको मे से एक-एक को रँग

राज देवी के सिंहासन के पास लाने लगा। उन लोगों ने सामने आकर भक्ति के साथ प्रणाम किया। जो उम्र मे बड़ा अथवा ब्राह्मण भी था, उसने भी प्रणाम किया, क्योकि सभी का विश्वास था कि देवी में भगवती का अंश है। दीन-दुखियों के उद्धार के लिए वे अवतीर्ण हुई हैं। इसीलिए कोई भी उनका पता ठिकाना अंग्रेजो को नही बताता था, अथवा उनकी गिरफ्तारी मे सहायता नही करता था। देवी ने सभी को मीठे वचनों से सम्बोधित कर, उनकी अपनी-अपनी अवस्था का परिचय पूछा। उसके बाद जिसकी जैसी अवस्था प्रतीत हुई उसी अनुसार दान देने लगीं। उनके पास ही रुपयो से भरे घड़े सजाकर रक्खे गये थे।

इस प्रकार प्रात. से सायंकाल तक देवी दरिद्रो को दान बाँटती रही। कोई एक पहर रात बीते दानयज्ञ समाप्त हुआ। उस समय तक देवी ने कुछ खाया पीया नही था। देवी की डकैती का स्वरूप ऐसा ही है –

कुछ दिन बाद रंगपुर में गुडलेड साहब के पास खबर पहुँची कि बैकुण्ठपुर के घने जंगल के बीच देवी चौधरानी का दल ठहरा हुआ है- डाकुओं की संख्या अनगिनती है। यह भी प्रचारित हो गया कि अनेक डाकू अपार धन-राशि लेकर अपने घरो को वापस आ रहे हैं–यह सुनकर निश्चय हो गया कि उन लोगों ने अनेक डाके डाले हैं। जो लोग देवी से दान में रुपया ले आये थे, वे साफ इनकार कर देते कहते रुपया कहा है? उन्हे डर था कि रुपये की बात सुनते ही जमीदार के प्यादे सब छीन ले जायेंगे। फिर भी उन लोगो का बढा हुआ खर्च देखकर सभी लोगो को विश्वास हो गया कि देवी चौधरानी इस बार बहुत बड़ी लूट कर रही हैं।

बारहवाँ परिच्छेद

यथासमय पिता के सामने उपस्थित होकर ब्रजेश्वर ने उनके चरण छुये। हरबल्लभ ने दूसरी बातो के बाद पूछा—असल बात बताओ। रुपये का क्या प्रबन्ध हुआ?

ब्रजेश्वर ने कहा कि ससुर रुपया नही दे सके। हरबल्लभ के माथे पर

मानो बज्र गिर पड़ा–हरवल्लभ ने चिल्लाकर पूछा–तो रुपया तुम नहीं लाये ?

मेरे ससुर तो रुपया नही दे सके, किन्तु एक दूसरी जगह से रुपया मिल गया है –

हरवल्लभ—मिल गया है ? तो इतनी देर तक मुझे बताया क्यो नही ? जय दुर्गे ! जान बच गयी !

ब्रज०––रुपया जहा से मिला है, उसे ग्रहण करना उचित है या नही, यह नही निश्चय कर सका।

हर०– क्यों, किसने दिया ?

ब्रजेश्वर ने मुंह झुकाये सिर खुजलाते-खुजलाते उत्तर दिया—उसका नाम मुझे याद नही आ रहा है–वही जो एक स्त्री डाकू है ?

हर०—कौन, देवी चौधरानी ?

ब्रज०—हाँ, वही।

हर०—उसके पास से तुम्हे रुपया कैसे मिला ?

ब्रजेश्वर के प्राचीन नीति शास्त्र मे लिखा है कि ऐसे अवसर पर पिता के सामने झूठ बोलने मे दोष नही है। ब्रज ने कहा–यह रुपया कुछ सुयोग से ही मिल गया है।

हर०—दुष्ट व्यक्ति का रुपया है ! लिखा-पढी किस तरह हुई है ?

ब्रज–ऐसे सुयोग से मिल गया कि लिखा पढी नही करनी पडी है। पिता इस विषय मे और अधिक छानबीन न करे, इस अभिप्राय से ब्रजेश्वर ने उसी क्षण बात को बदलते हुए कहा–पाप का धन जो ग्रहण करता है, वह भी पाप का भागी होता है। इसीलिए उस रुपये को लेने की मेरी विशेष सम्मति नहीं है।

हरबल्लभ बोला–रुपया न लूंगा तो क्या जेल जाऊंगा ! जब रुपया उधार ले रहा हूँ तो उसमे पाप का रुपया और पुण्य का रुपया कैसा ? और जप तप का रुपया भी किससे मिलेगा ? इस तरह की शका करने की जरूरत नही है। किन्तु असल भय यह है कि यह एक डाकू का रुपया है। लिखा-पढ़ी उसने की नहीं है–भय होता है कि देने मे देर होने से कही घर-द्वार लूट-पाट न ले जाय।

ब्रजेश्वर चुप हो रहा।

हर० —तो रुपये की मियाद कितने दिन की है ?

व्रज० —बैसाख महीने के शुक्ल पक्ष की सप्तमी के चन्द्रास्त तक।

हर०—वह तो है डाकू। प्रगट तो होती नही। उससे भेट कहाँ होगी जो रुपया भेज दूँगा ?

व्रज—उस दिन सन्ध्या के बाद वह सन्धानपुर मे कलसाजी के घाट पर बजरे में रहेगी। वहा रुपया भेज देने मे ही काम बन जायगा।

हरबल्लभ ने कहा—तो ठीक उसी दिन उसी जगह रुपया भेज दिया जायगा।

ब्रजेश्वर चले गये। हरबल्लभ ने तब मन ही मन बुद्धि दौडाकर इस पर खूब अच्छी तरह विचार किया। अन्त में उन्होने निश्चय किया–हूँ ! इस औरत का रुपया चुकाने अब मैं जाऊँगा ! उसे अंग्रेज सैनिको द्वारा गिरफ्तार करा देने से सारा झगडा ही मिट जायगा। बैसाखी सप्तमी के दिन सन्ध्या के बाद कप्तान साहब पल्टन लेकर यदि उसके बजरे पर न चढ़ जायें तो मेरा नाम हरबल्लभ नही—उसको मुझसे रुपया न लेना पडेगा।

हरबल्लभ ने इस पुण्यमय अभिसन्धि को अपने मन ही मे छिपा रक्खा—ब्रजेश्वर को भी कुछ नही बताया।

इधर सागर ब्रह्मा ठकुरानी के पास आकर बातें बनाकर बोली–ब्रजेश्वर एक राजरानी के बजरे पर जाकर उससे विवाह कर आया है—मैंने बहुत मना किया था, उसने नही माना। वह औरत जाति की कैवर्त है—और उसके दो विवाह पहले हो चुके हैं—इस कारण व्रजेश्वर की जाति चली गई है। अब मै व्रजेश्वर की थाली में खाना न खाऊँगी, यह प्रतिज्ञा कर चुकी हू।

ब्रह्म ठकुरानी के यह सब बाते ब्रजेश्वर से पूछने पर बृजेश्वर ने अपराध स्वीकार कर कहा—रानी जी जातिकुल में श्रेष्ठ है—और विवाह तो मेरे भी तीन हुए हैं, उनके भी तीन है।

बूह्मा दादी समझ गयीं कि यह बात झूठी है किन्तु सागर का मतलब यह था कि बूह्मा दादी यह कहानी नयनतारा को सुना दें ! इसमे पलभर की देर नही हुई। नयनतारा तो पहले ही सागर को देखकर जल उठी थी। फिर जब उसने सुना कि पति ने एक बूढी औरत से विवाह कर लिया है तो वह एकदम

आगबबूला हो गयी । ब्रजेश्वर कुछ दिनों तक नयनतारा के पास भी न फटक सके, सागर के ही पास आते-जाते रहे ।

सागर का अभिप्राय सिद्ध हो गया । किंतु नयनतारा ने बहुत हाय-हाय मचा दी । अन्त मे मालकिन के पास जाकर उसने नालिश की । सासजी ने कहा—तुम तो बेटी बडी पागल हो । ब्राह्मण का लडका क्या कैवर्त की लड़की से ब्याह करता है । तुम चिढती हो इसलिए सभी तुमको चिढाते हैं ।

नयान बहू फिर भी न समझी । बोली—यदि सचमुच ही ब्याह हो चुका हो ? गृहणी ने कहा—यदि सच ही हो, तो बहू को विधिपूर्वक लाकर घर मे रक्खूँगी । लडके की बहू को छोड़ तो न सकूँगी ।

उसी समय ब्रजेश्वर आ गया, नयान बहू उठकर भाग गई । ब्रजेश्वर ने पूछा—मा, तुम अभी क्या कह रही थी ?

गृहणी बोली—कह रही थी कि यदि तू फिर व्याह कर लेता है तो बहू को विधिपूर्वक लाकर घर मे रक्खूंगी ।

ब्रजेश्वर अन्यमनस्क हो गया, कुछ भी उत्तर न देकर वह चला गया ।

सन्ध्या समय गृहणी ने पति के पखा झलते-झलते उनसे यही बातें विनयपूर्वक कही । मालिक ने पूछा—तुम्हारा क्या विचार है ?

गृहणी—मैं सोचती हू कि सागर बहू घर गृहस्थी सम्हालती नही । नयान बहू लडके के उपयुक्त नही है । तो इस दशा मे यदि कोई अच्छी लडकी देखकर ब्रज ब्याह करके गृहस्थी चलावे तो मुझे तो सुख ही होगा ।

हरबल्लभ—तो लडके की रुचि यदि तुमको ऐसी जान पड़े तो मुझे बताना । मैं अगुआ बुलाकर अच्छी लडकी देखकर विवाह ठीक कर लूँगा ।

गृहणी—अच्छा, मैं उसकी रुचि का पता लगाऊँगी ।

रुचि जानने का भार ब्रह्माठकुरानी पर पडा । ब्रह्मा ठकुरानी अनेक बिरह-सन्तप्त और विवाहप्रयासी राजकुमारों की कहानियाँ ब्रज को सुनायी किंतु इस से ब्रज का मन कुछ भी समझ मे नही आया । तब ब्रह्मा ठकुरानी ने स्पष्ट पूछताछ शुरू कर दी । फिर भी वह कुछ न समझ सकी । ब्रजेश्वर ने केवल कहा—माता-पिता की जो आज्ञा होगी, मै उसी का पालन करूँगा ।

इस बात की फिर कोई विशेष चर्चा नही उठी ।

तीसरा खण्ड

पहला परिच्छेद

वैशाख शुक्ल सप्तमी आ गयी, किन्तु देवी रानी का ऋण चुकाने का कोई उद्योग नही हुआ। हरबल्लभ अब ऋणमुक्त हो चुके है, चाहते तो रुपया जुटा कर वे देवी का ऋण चुका सकते थे, किन्तु उस तरफ उन्होने ध्यान ही नही दिया। उनको इस विषय मे एकदम निश्चेष्ट देख ब्रजेश्वर ने दो-चार बार इस प्रसग को उठाया, किन्तु हरबल्लभ ने उस को मीठी बातो मे बहला कर चुप कर दिया। इधर बैसाख शुक्ल पक्ष की सप्तमी प्राय: आ धमकी। दो-चार दिन ही रह गये थे। तब ब्रजेश्वर पिता के लिए बार-बार टोकने लगे। हरबल्लभ ने कहा—अच्छी बात है घबडाओ मत। मै रुपये की खोज मे जा रहा हूँ; छठ को लौटूंगा। हरबल्लभ पालकी पर चढ साथ मे एक रसोइया ब्राह्मण नौकर और दो लठैतों को लेकर घर से रवाना हो गये।

हरबल्लभ रुपये की चेष्टा मे गये जरूर, किन्तु वह दूसरे ही फेर मे थे। वे सीधे रगपुर चले गये वहा जाकर उन्होने कलक्टर साहब से भेट की। उस समय कलक्टर ही शान्ति के रक्षक थे। हरबल्लभ ने उनसे कहा—मेरे साथ थोड़े सिपाही दीजिये मैं देवी चौधरानी को गिरफ्तार कराऊंगा। गिरफ्तार कराने पर मुझे क्या इनाम दीजियेगा यह बताइये।

यह सुनकर साहब बडे प्रसन्न हुए। वे जानते थे कि देवी चौधरानी लुटेरों की नेत्री हैं। उसको पकड़ पाने से और भी सभी डकैत पकड़े जायेगे। उन्होंने

देवी को पकडने को बडी चेष्टा की थी, किसी तरह सफल न हो सके थे। इस कारण यह सुनकर कि हरबल्लभ उस भयावनी राक्षसी को गिरफ्तार करा देगा, साहब बहुत सन्तुष्ट हो गये। उन्होने बहुत पुरस्कार देने की स्वीकृति दे दी। हरबल्लभ ने कहा—मेरे साथ पांच सौ सिपाही भेजने का हुकुम दिया जाय। साहब ने हुकुम दे दिया। हरबल्लभ को साथ ले लेफ्टिनेण्ट ब्रेनन फौज लेकर देवी को पकडने चले।

हरबल्लभ ब्रजेश्वर से सुन चुके थे कि ठीक उसी घाट पर देवी बजरा मे ही रहेगी। लेफ्टिनेण्ट ब्रेनन इसी कारण कुछ फौज लेकर नाव से रवाना हुए। इस तरह पाच नावे नदी के बहाव की ओर देवी का बजरा घेरने के लिये चल पडी। इधर लेफ्टिनेण्ट साहब ने और भी कुछ सैनिकों को गुप्तरूप से जगल के रास्ते नदी के किनारे-किनारे भेज दिया।

देवी का बजरा कहाँ रहेगा, यह हरबल्लभ ने साहब को बता दिया था। एसी जगह के निकट बन मे उन्हो ने फौज को छिपा रक्खा कि यदि देवी नावों की चोट से घबरा कर जगल की राह से भागने की चेष्टा करे, तो उसको इसके द्वारा घेर कर पकड लेगे।

भाग जाने का एक रास्ता और था—नावे नदी के बहाव की तरफ आ रही थी। इससे नाव देख कर देवी बहाव की ही तरफ भाग जा सकती है, इसीलिए लेफ्टिनेण्ट ब्रेनन ने बाकी सिपाहियों को दो कोस बहाब की तरफ आगे भेज दिया। उनके ठहरने के लिए एक ऐसा स्थान नियत कर दिया जहाँ यह त्रिस्रोता नदी इन गरमी के दिनों मे पैदल पार की जा सकती है। उसी जगह सिपाही नदीके किनारे छिपे रहेगे, बजरा देखते ही जल में आकर उसे चारो ओर से घेर लेगे।

एक सन्यासिनी को पकडने के लिये इतना बडा आडम्बर रचा गया। किंतु राजेकर्मचारियों ने इस आडबर को अनावश्यक नहीं समझा। देवी सन्यासिनी ही हों या जो भी हों, साहब लोगों को इस बात की जानकारी थी कि उसके पास एक हजार लडाके योद्धा हैं। इन योद्धाओं को "बरकदाज" कहा जाता था। बहुत बार कम्पनी के सिपाहियों को इन बरकदाजों की लाठियों से चोट खाकर भाग जाना पडा था, ऐसी जनश्रुति प्रचलित थी। लाठी तुम्हारे दिन अब नहीं रहे। तुम हो तो तुच्छ बाँस की वशधर, किन्तु सधे हाथ में पड़ जाने से,

ऐसा कोई काम नही, जिसे तुम न कर सकती थी ! तुम कितनी ही तलवारों को दो टुकडो मे तोड चुकी हो, कितनी ही ढालो को– खड्गो को तुमने टूक-टूक कर डाला है। हाय ! कितनी ही बन्दूकें और सगीनें तुम्हारे प्रहार से योद्धाओं के हाथों से छूट कर गिर चुकी है। बड़े-बडे योद्धा टूटे हाथ लेकर भाग खड़े हुये है। लाठी ! तुम बंगाल की इज्जत रखती थीं। मान रखती थीं, उसके मान की रक्षा करती थीं, धन-जन की रक्षा करती थी। सब का मान रखती थी। मुसलमान तुम्हारे भय से त्रस्त थे, डाकू तुम्हारे तेज से आकुल रहते थे; उपद्रवी तुम्हारे भय से शान्त रहते थे। तुम उस जमाने की पेनाल कोड थीं–तुम पेनाल कोड ही की तरह दुष्टों का दमन करती थी, पेनाल कोड की तरह शिष्टो का भी दमन करती थीं, और पेनाल कोड की ही तरह राम के अपराध मे श्याम का सिर फोड देती थी। किन्तु पेनाल कोड से भी अधिक तुम्हारा रुतबा यह था कि तुम्हारे ऊपर दुबारा अपील नही की जा सकती थी ! हाय ! आज तुम्हारी वह महिमा चली गयी ! पेनाल कोड ने तुम को निकाल बाहर कर तुम्हारा आसन ग्रहण कर लिया है–समाज की व्यवस्था का भार तुम्हारे हाथ से छिनकर उसके हाथ मे चला गया है ! लाठी अब तुम लाठी नही हो, बाँस का एक टुकडा मात्र रह गयी हो ! तुम छडी का स्वरूप पाकर सियार-कुत्तो से डरने वाले बाबुओं के हाथ में शोभा देती रहो, कुत्तो के भूँकते ही उन कोमल हाथो से खिसक पडो। यही तुम्हारा शौर्य रह गया है। तुम्हारी वह महिमा अब नही रही। सुनता हूँ कि उस युग मे तुम शायद उत्तम औषधि भी थीं, मानसिक व्याधि के उत्तम चिकित्सको के मुख मे सुनता हू–"मूर्खस्य लाठ्यौषधम्।' आजकल तो मूर्खो की औषधि है–बबुआ" बच्चा।"

उससे भी रोग निवृत्त नही होता। तुम्हारे सगोत्र लोगों मे से बहुतों के गुण इस दुनिया मे चमक रहे है। कडी बात, खूंटी खूटा से लेकर श्री नन्दनन्दन की मोहन वंशी तक सबका ही गुण मैं समझता हूँ–किन्तु लाठी ! तुम्हारी तरह गुणवान कोई नही है। तुम अब नही रही–चली गयी। आशा है कि तुमको अक्षय स्वर्ग मिल गया होगा। तुम इन्द्रलोक मे जाकर नन्दन कानन के पुष्प-भारावनत परिजात वृक्ष के लिए सहारा बनी हुई हो। देवकन्याएं तुम्हारी चोट से कल्पवृक्ष से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूपी फलो को तोड रही है। एकाध फल पृथ्वी पर भी लुढ़क आता तो क्या ही सुन्दर होता ?

दूसरा परिच्छेद

जिसकी लाठी के आतंक का सामना करने के लिये इतने सिपाहियों का जमाव हुआ था उसके पास एक भी लाठी नहीं थी, उसके निकट एक भी लठैत नही था। देवी उसी घाट पर है, जिस घाट पर बजरा बाँधकर वह व्रजेश्वर को कैद कर आयी थी। अभी शाम बीती ही है। वह बजरा पूर्ववत् ही सजाया गया है–किंतु पूर्णरूप से उसी तरह नही है। वह नाव वहाँ नहीं है, उसमे जो पचास लठैत थे, वे भी नही है। उसके सिवाय बजरे के ऊपर एक भी मनुष्य नही है–माझी-मल्लाह, रगराज आदि कोई भी नही हैं! किंतु बजरे का मस्तूल उठा हुआ है–चारों पाल तने हुए हैं। हवा की कमी मे पाल मस्तूल के साथ लिपटे जा रहे हैं–बजरे का लगर डाला नही गया है–केवल दो रस्सो से किनारे पड़े खूँटो से बंधा हुआ है। देवी स्वय–पहले की तरह रत्नभूषणो से सजी धजी नही है, मूल्यवान वस्त्र नही पहने है किंतु आज उनकी शोभा अजीब ही प्रकार की है। ललाट, कण्ठ, बाहें और हृदय–सर्वांग मे सुगन्धित चँदन का लेप है चन्दनचर्चित ललाट के ऊपर सुगन्धित पुष्पो की माला सिर के चारो ओर मस्तक की विशेष शोभा बढा रही है। हाथ मे रमणीक फूलो का गजरा कगन की तरह लिपटा है। दूसरा एक भी आभूषण नही है। मोटे कपडे की एक सादी धोती पहने हुए है।

आज देवी छत पर अकेली नही बैठी है, उनके साथ दो स्त्रियाँ और बैठी है। उनमे से एक है निशि, दूसरी है दिवा। इन तीनो मे जो बातचीत चल रही थी, उसका कुछ अंश सुन लेने मे हर्ज ही क्या, है?

दिवा—दिवा अशिक्षित थी, यह बात पाठको को स्मरण रखना चाहिये–कह रही थी—परमेश्वर को शायद प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

देवी बोली—कही प्रत्यक्ष देखा नही जा सकता। किंतु मै प्रत्यक्ष देखने की बात नहीं कह रही थी, मैं साक्षात्कार करने की बात कह रही थी। प्रत्यक्ष छः प्रकार के होते है। तुम जिस प्रत्यक्ष की बात कह रही हो वह केवल चक्षुओं का प्रत्यक्ष हैं। मेरी आवाज तुमको सुनाई पड़ रही है–आवाज का यह सुनना

तुम्हारे कानों के लिए प्रत्यक्ष है। मेरे हाथ के फूलों की गन्ध तुम्हारी नाक में क्या पहुँच रही है?

दिवा—हां, पहुँच रही है।

देवी—वह तुम्हारी घ्राणेन्द्रिय के लिए प्रत्यक्ष है। और मैं यदि तुम्हारे गालों पर एक थप्पड़ लगा दूं, तो उस हालत मे वह तुम्हारी त्वचा का स्पर्श सम्बन्धी प्रत्यक्ष होगा। और इसी क्षण यदि निशि तुम्हारा सिर खाले, तो उस दशा मे तुम्हारे मस्तिष्क का अशन-प्रत्यक्ष हो जायगा।

दिवा—यह कोई बुरा प्रत्यक्ष तो न होगा। किंतु परमेश्वर दिखाई भी नही पड़ता, सुनाई भी नही पडता, वह सूंघा भी नही जाता, खाया भी नही जाता, छुआ भी नही जाता। उसको प्रत्यक्ष करोगी कैसे?

देवी—ये तो हुए पाँच प्रकार के प्रत्यक्ष। छः प्रकार के प्रत्यक्ष की बात मै कह चुकी हूं, क्योंकि आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा के अतिरिक्त एक और ज्ञानेन्द्रिय है, जानती नही?

दिवा—क्या, दात?

निशि—दूर हट, मुँहजली! इच्छा होती है कि मुक्का मार कर तेरी बत्तीसी तोड डालूँ।

देवी—(हँसते-हंसते) चक्षु आदि पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं, हस्तपादादि पाँच कर्मेन्द्रिय है, और इन्द्रियाधिपति मन उभयेन्द्रिय है, अर्थात् मन ज्ञानेन्द्रिय भी है, कर्मेन्द्रिय भी है। मन ज्ञानेन्द्रिय है, इसलिए मन के द्वारा भी प्रत्यक्ष होता है। इसको मानस प्रत्यक्ष कहते है। ईश्वर मानस-प्रत्यक्ष का विषय है।

निशि—"ईश्वरासिद्धेः प्रमाणाभावात्।" जिन्होने सांख्य-प्रवचन सूत्र और भाष्य पढा है वे निशि की इस उक्ति का अर्थ समझ जायंगे।

निशि एक तरह से देवी की सहपाठिनी थी।

देवी ने उत्तर दिया—"सूत्रकारस्योभयेन्द्रिय शून्यत्वात्—न तु प्रमाणाभावात्।"

दिवा—हटाओ अपना हवात् भवात्—मैं तो परमेश्वर को कभी मन के भीतर देख नही पाती।

देवी—फिर देखने की कोशिश करना। चाक्षुष-प्रत्यक्ष को देखना कहते हैं—

किसी दूसरे प्रत्यक्ष को देखना नही कहते–मानस प्रत्यक्ष भी देखना नही है। 'चाक्षुषप्रत्यक्ष' का विषय है रूप दर्शन एक बहिर्विषय। मानसप्रत्यक्ष का विषय है–अन्तर्विषय। मन के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है। ईश्वर को देखा नही जा सकता।

दिवा—कहाँ ? मैने तो ईश्वर को कभी मन के भीतर प्रत्यक्ष नही किया है?

देवी—मनुष्य मे स्वभावत. प्रत्यक्षशक्ति स्वल्प होती है–बिना किसी सहायता के वह सभी वस्तुओ को प्रत्यक्ष नही कर सकता।

दिवा—प्रत्यक्ष के लिए सहायता किस की चाहिए ? देखो, यह नदी, जल, पेड-पौधे, नक्षत्र, सभी मै बिना किसी सहायता के देख रही हूँ।

"सभी को नही। मैं इसका एक उदाहरण दूँगी।" यह कह कर देवी हँस पड़ी।

हँसने का ढग देख निशि ने पूछा—यह क्या ?

देवी कहने लगी—अग्रेजो के सिपाही आज मुझे गिरफ्तार करने आ रहे है, जानती हो ?

दिवा ने लम्बी सास छोड कर कहा—हा, यह तो जानती हू।

देवी—सिपाहियो को तुमने प्रत्यक्ष देखा है ?

दिवा—नही। किन्तु आ जाने पर प्रत्यक्ष करूँगी।

देवी—मै कहती हू, वे आ गये हैं, किंतु बिना किसी सहायता के तुम प्रत्यक्ष करने मे असमर्थ हो रही हो। लो, सहायता ग्रहण करो।

यह कह कर देवी ने दिवा के हाथ मे दूरबीन दे दिया। दिवा ने देखा।

देवी ने पूछा–क्या देख रही हो ?

दिवा—एक नाव जिसमे मैं बहुत लोगों को देख रही हूँ।

देवी—उसमे सिपाही बैठे हैं। दूसरी नाव को देखो।

इस तरह देवी ने दिवा को पाँच नावे विभिन्न स्थानो मे दिखाईं। निशि ने भी देखा। निशि ने भी पूछा-नावों को किनारे रेती पर लगा रक्खा गया है, यह मैं देख रही हूँ ! हम लोगों को पकडने का उनका इरादा है किंतु हमारे पास न आकर नावों को किनारे क्यों लगा रक्खा है ?

देवी–जान पडता है कि खुश्की की राह से जो सिपाही आवेगे, वे शायद

अभी पहुँचे नही हैं, नाव के सिपाही उनकी प्रतीक्षा में हैं। खुश्की से आने वाले सिपाहियों के आने के पहले, नावो के आगे बढ आने से मैं जंगल के रास्ते से भाग सकती हूँ, आशका से वे आगे नही बढ रहे हैं।

दिवा—किन्तु हम लोग तो उन्हे देख रही है, जब चाहे भाग सकती हैं।

देवी—वे लोग तो नही जानते कि हमारे पास दूरबीन है।

निशि—बहन ! प्राण बचा रहने से किसी न किसी दिन पति के साथ भेंट होगी ही ! आओ चलें, उतर कर भाग कर प्राण-रक्षा कर लें, यदि अभी तक स्थल मार्ग वाले सिपाही नही आये हों तो उधर भाग कर प्राणरक्षा का उपाय है।

देवी—यदि प्राण के लिए मैं इतनी कातर रहती, तो ये सब समाचार जान-सुन कर भी मे यहाँ क्यो आती ? यदि आ भी गयी तो मैंने अपने सभी आदमियों को विदा क्यो कर दिया। मेरे पास हजार बरकन्दाज हैं, इन मे से सभी को एक ही स्थान मे भेज दिया, क्यों ?

दिवा— यदि हम पहले यह बात जानती तो तुमको ऐसा नही करने देती।

देवी—तुम्हारी सामर्थ्य ही क्या है दिवा ! मे जो निश्चय कर चुकी हू, उसे मैं अवश्य करूँगी। आज मे पतिदर्शन करूँगी, पति की अनुमति लेकर जन्मान्तर मे उन को पाने की कामना करके प्राण समर्पण कर दूंगी। तुम लोग मेरी बात मानना। दिवा, निशि ! मेरे पति जब लौट जायेंगे, तब उन की नाव पर चढ कर तुम लोग उनके साथ चली जाना। मैं अकेली गिरफ्तार हो जाऊँगी, मैं अकेली फाँसी पर चढूँगी। इसीलिए मेने बजरे से और सभी को बिदा कर दिया है। तुम लोग उस समय नही गयी। किन्तु, मुझे वह भीख दो-मेरे पति की नाव पर चढ कर तुम लोग भाग जाना।

निशि—शरीर मे प्राण रहते मैं तुमको न छोड़ूंगी। मरना होगा तो एक साथ मरूंगी।

देवी—उन बातों को अभी छोडो, जो बात कह रही थी, उसको कह कर खत्म करलूँ। जिस को नेत्रों से तुम प्रत्यक्ष करने मे असमर्थ हो रही थीं, उसे जिस तरह तुमने दूरबीन की सहायता से प्रत्यक्ष कर लिया, वैसे ही ईश्वर को प्रत्यक्ष करने के लिए दूरबीन चाहिए।

दिवा—मन के लिए दूरबीन कैसी ?

देवी—वह है योग !

दिवा—क्या वही सन्यास, प्राणायाम, कुम्भक, पाखड, जाल—

देवी—उसको मैं यो नही कहती । योग अभ्यास मात्र है, किंतु सभी अभ्यास योग नही हैं । तुम यदि दूध घी खाने का अभ्यास करो, तो उसको योग नही कहा जायगा । तीन तरह के अभ्यास है, जो योग कहलाते हैं ।

दिवा—कौन कौन हैं, वे तीन ?

देवी—ज्ञान, कर्म, भक्ति । ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग ।

तब तक निशि दूरबीन लेकर इधर उधर देख रही थी । देखते-देखते वह बोली—कुछ गडबडी मालूम होती है ।

देवी—क्या कहती हो ? गडबडी क्या है ?

निशि—एक छायी हुई नाव आ रही है। शायद वह अग्रेजों की खुफिया नावहै ।

देवी ने निशि के हाथ से दूरबीन लेकर छाई हुई नाव को देखा । उन्होने कहा—वह हैं । मेरे लिए यही सुखबर है । वे ही आ रहे है । तुम लोग नीचे जाओ ।

दिवा और निशि छत से उतर कर कमरे के भीतर चली गयी । छाई हुई नाव धीरे-धीरे आकर बजरे के पास लग गई । नाव मे ब्रजेश्वर बैठे थे । ब्रजेश्वर कूद कर बजरे पर चढ गये । नाव कुछ दूर बांधने की आज्ञा माझियों को दे दी । माझी ने ऐसा ही किया ।

ब्रजेश्वर के निकट आते ही देवी उठकर खडी हो गयी । उन्होने सिर झुका ब्रजेश्वर की पदधूलि ग्रहण की । बाद को दोनों बैठ गये । ब्रजेश्वर बोले—आज मैं रुपया न ला सका । शायद दो-चार दिनो मे दे सकूंगा । दो-चार दिनों के बाद कब कहा तुम से भेंट होगी, यह जानना चाहता हू ।

छि. छि: ब्रजेश्वर ! दस वर्षों के बाद भी प्रफुल्ल से यह छल !

देवी ने उत्तर दिया—मेरे साथ अब आपकी भेंट न होगी—कहते-कहते देवी का गला रुँध गया, आखे भर आयी, आखें पोंछकर देवी ने कहा—मेरे साथ भेंट न होने से मेरा ऋण चुकाने का एक अन्य उपाय भी है । जब आपको सुविधा हो, वह रुपया दीन दुखियों मे बाँट दीजियेगा—ऐसा होने पर मैं पा जाऊँगी ।

ब्रजेश्वर ने देवी का हाथ पकड़ लिया, कहा प्रफुल्ल ! तुम्हारा रुपया—

"खाक रुपया !" बात खतम नहीं हो पायी—मुँह की बात मुँह मे ही रह गयी। ज्यों ही ब्रजेश्वर ने 'प्रफुल्ल' कहकर हाथ पकडा, त्यों ही दस वर्षों से बंधे बांध को तोडकर प्रफुल्ल की आँखो के जल का सोता उमडकर बहने लगा। ब्रजेश्वर की रुपये की बात उस सोते में न जाने कहां बह गयी, वह तेजस्विनी रानी नादान बच्ची की तरह फफक-फफक कर रो उठी। ब्रजेश्वर बडी विपद मे फंस गये। मन ही मन ब्रज का यह दृढ निश्चय था कि इस पापिष्ठा का जीविका साधन डकैती है और इसके लिए एक बूंद भी आसू न गिराऊँगा। किन्तु आखो के आँसुओ पर इतना कानून कायदा नही चलता। वे सहसा बिना बुलाये आकर ब्रजेश्वर के नेत्रों मे छलछला आये। ब्रजेश्वर ने सोचा, हाथ उठा कर आखें पोछने से पकड जाऊँगा ! इसीलिए आखें पोंछी नही। आखें न पोंछने से वे लबालब भर गयी-गालो पर से धार बह चली,—जो प्रफुल्ल के हाथ पर बह कर आ गिरी।

बालू का बाँध मानो टूट गया। ब्रजेश्वर निश्चय करके आया था कि प्रफुल्ल को डाका डालने के लिये अच्छी तरह तिरस्कृत करूँगा। उसे पापिष्ठा कहूगा और दो-चार लम्बी-चौडी बातें सुनकर, फिर एक बार जीवन भर के लिए त्याग कर चला जाऊंगा। किन्तु जिसका हाथ रो-रोकर भिगो दिया, उसके ऊपर लम्बी-चौडी बातों की चोट वह कैसे करे ?

तब आखें पोंछ कर ब्रजेश्वर ने कहा—देखो प्रफुल्ल ! तुम्हारा रुपया मेरा ही है। किन्तु मैं बहुत ही कातर हो गया हूँ। दस वर्षों से निरन्तर तुम्हारा ही चिन्तन करता रहा हू। मेरी दो स्त्रियाँ और है। मैंने उन्हे इन दस वर्षों मे स्त्री रूप में देखा ही नही, मै तुमको ही अपनी सहधर्मिणी जानता हूँ। ऐसा क्यों है, यह मैं ही समझती हूँ। तुमको समझा न सकूंगा। मैने सुना था कि इस संसार में तुम नही हो। किन्तु मेरे लिए तुम सदा जीवित थीं। मेरे मन-मंदिर में तुम्हारी मूर्ति सदा सजीव रहती। हृदय मे अर्धांगिनी के पद पर किसी का अधिकार नही था। क्या बताऊँ कि मैंने क्या सोचा था, किन्तु बता देने में भी कोई हानि नही है—तुम्हारी मृत्यु का समाचार सुनकर मैं भी प्राण देने को उद्यत हो गया था। अब सोचता हूँ कि उस समय मर जाने से ही अच्छा

होता। तुम मर जाती तो भी अच्छा होता—तुम न भी मरी थीं तो मेरा मर जाना ही अच्छा होता। इस समय मैं जो कुछ देख-सुन रहा हूँ, वह देखना-सुनना नही पडता। आज दस वर्षो का खोया धन फिर पाने पर, मुझे स्वर्ग-सुख की अपेक्षा भी अधिक सुख होता। ऐसा न होकर, प्रफुल्ल ! आज तुमको पाकर मुझे मर्मान्तिक पीडा हो रही है।—एक बार रुककर गले को साफकर, सिर को हाथ से पकड कर ब्रजेश्वर बोला—मन-मन्दिर के भीतर मैंने जो स्वर्ण प्रतिमा गढ रक्खी थी—मेरी वही प्रफुल्ल—मुँह से कहते शर्म आती है—उसी प्रफुल्ल की यह वृत्ति, छिः।

प्रफुल्ल बोली—क्या, मैं डकैती जो करती हूं।

ब्रज—नही करती क्या ?

इसके उत्तर मे प्रफुल्ल एक बात कह सकती थी। जब ब्रजेश्वर के पिता ने प्रफुल्ल को जीवन भर के लिए घर से निकाल बाहर किया था, तब प्रफुल्ल ने कातर होकर ससुर से पूछा था—मै दाने-दाने के लिए मुँहताज हूँ, तुम लोग मुझे निकाल बाहर करोगे तो मै किस तरह जीवन निर्वाह करूँगी ? इसका उत्तर ससुर ने दिया था—"तुम भीख मागकर, डकैती, चोरी जो भी हो करके खाना।" प्रफुल्ल मेधाविनी थी, यह बात उसे भूली नही थी। भूलने योग्य वह थी भी नही। आज ब्रजेश्वर ने प्रफुल्ल को डाकू कहकर उसकी भर्त्सना की; प्रफुल्ल के पास उसका उत्तर भी था। प्रफुल्ल यह उत्तर दे सकती थी मैं डाकू जरूर हूँ, किंतु आज उसके लिए इतनी भर्त्सना क्यो ? तुम लोगो ने ही तो चोरी-डकैती करके खाने को कहा था। मैं गुरुजनो की आज्ञा का पालन कर रही हूँ। पर इस कटु सत्य को न कहना सयम की पराकाष्ठा थी। प्रफुल्ल उस चरम सीमा को प्राप्त कर चुकी थी, इसीसे वह बात उसने मुँहसे भी नही निकाली। प्रफुल्ल ने पति के सामने हाथ जोडकर उत्तर दिया—मैं डाकू नहीं हूँ। मैं तुम्हारे सामने शपथ खाकर कहती हूं, मैने कभी डकैती नही की। डकैती की एक कौडी भी मैंने कभी नही छुई। तुम मेरे देवता हो। मैं अन्य देवता की साधना मे रत थी किंतु उसमे मन रमा नही। तुमने सब देवताओ का स्थान छीन लिया है, तुम ही हो मेरे एक मात्र आराध्य देव ! मै तुम्हारे सामने शपथ लेकर कहती हूँ कि मैं डाकू नही हूँ किंतु यह जानती हूँ कि लोग मुझे डाकू कहते हैं। क्यों

कहते हैं यह भी जानती हूं। वही बताने के लिए आज मैं यहाँ आयी हूं। आज न सुनने से फिर कभी आप उसे सुन न पावेंगे, सुनिये।

तब प्रफुल्ल ने, जिस दिन उसे ससुर ने घर से निकाल दिया था, उस दिन से आज तक की अपनी सारी आपबीती निष्कपट भाव से व्रज को सुना दी। सारी बात सुनकर, व्रजेश्वर विस्मित, लज्जित अत्यन्त गद्गद् और उस महा महिमामयी रमणी के सामने कुछ सहम सा गया। प्रफुल्ल ने बात खत्म करके पूछा—मेरी बातो पर तुम्हे शायद विश्वास न हुआ हो।

अविश्वास का स्थान ही नही था। प्रफुल्ल की प्रत्येक बात व्रजेश्वर के मन मे समा गयी। व्रजेश्वर उत्तर न दे सका–किंतु उसकी आनन्दपूर्ण मुद्रा देख प्रफुल्ल समझ गयी, विश्वास हो गया है! प्रफुल्ल फिर कहने लगी–अब अपने चरणो की रज देकर इस जन्म के लिये मुझे विदा करे, आप यहां विलम्ब मत करे— आज यहाँ बडी विपत्ति का सामना है। इन दस वर्षो के बाद तुमको पाकर इसी क्षण स्वेच्छा से बिदा कर रही हूँ। इसी से समझ लें कि कोई असाधारण घटना घटने वाली है। मेरी दो सहेलियाँ इस नाव मे हैं। वे गुणों की खान है। मैं भी उनको बहुत प्यार करती हूँ। अपनी नाव पर तुम लेते जाओ। घर पहुँच कर वे जहाँ जाना चाहे उन्हे भेज देना। मुझे जिस तरह तुमने आज तक याद रक्खा, उसी तरह याद रखना। देखना, सागर मुझे भूल न जाय।

व्रजेश्वर चुपचाप खडा सोचता रहा। बोला—मै कुछ भी समझ नही पा रहा हूँ! प्रफुल्ल मुझसे साफ कहो क्या बात है? तुम्हारे पास इतने आदमी रहते है—आज कोई नहीं है! बजरे में माझी तक नही हैं! केवल दो स्त्रिया है। उनको भी बिदा कर देना चाहती हो। कह रही हो कि भारी विपद् आने वाली है—मुझे भी चले जाने को कह रही हो। और कह रही हो कि इस जन्म में फिर भेंट न होगी। यह सब क्या है? सामने कौन सी विपत्ति है? मुझे न बताओगी तो मैं कदापि न जाऊंगा। विपत्ति सुन लेने पर भी मैं जाऊंगा या नहीं यह अभी नही कह सकता।

प्रफुल्ल—ये सब बातें तुम्हारे सुनने योग्य नही हैं।

व्रज–तो क्या मुझे इस सम्बन्ध में सुनने अथवा जानने का अधिकार नहीं है?

उसी समय धाँय शब्द के साथ एक बन्दूक की आवाज सुनाई गई।

तीसरा परिच्छेद

धांय-धांय बन्दूके दगने की आवाज सुन—ब्रजेश्वर के मुख की बात मुख मे ही रह गयी। दोनो ही चौककर सामने की ओर ताकने लगे—उन्हे दिखाई पड़ा—दूर से पाँच नावे बढी आ रही हैं, डाडों के झपेटो से उछलते जलकण चन्द्रमा के प्रकाश मे चमक रहे है! देखते-देखते मालूम पडा कि पाँचों नावे सिपाहियों से भरी है। यह बन्दूक दोनो के आगमन की संकेत मात्र दगी थी! आवाज होते ही पाँचो नावें खुल गयी। देखकर प्रफुल्ल बोली—अब आधा पल भी देर मत करो! तुरन्त अपनी नाव पर चढ़कर चले जाओ।

ब्रज॰—क्यो? ये नावें कैसी है? बन्दूक किसने दागी है?

प्र॰—बिना सुने न जाओ?

ब्रज॰—किसी तरह भी नहीं।

प्र॰—इन नावो में अंग्रेजी कम्पनी के सिपाही है। स्थल से आने वाले कम्पनी के सिपायियो ने ही बन्दूक से आवाज की है।

ब्रज॰—ये सिपाही इधर किस लिए आ रहे हैं? तुमको पकडने के लिए?

प्रफुल्ल चुप हो रही। ब्रजेश्वर ने पूछा—तुम्हारी बातों से मालूम हो रहा है कि पहले से ही तुम्हे यह मालूम था।

प्र॰—मैं जानती थी— मेरे गुप्तचर सर्वत्र रहते है।

ब्रज॰—इस घाट पर आ जाने के बाद तुमने यह समाचार पाया है या पहले ही पा चुकी थी।

प्र॰—पहले ही मालूम हो चुका था।

ब्रज॰—तो जान बूझकर यहा क्यो आ गयी?

प्र॰—आपके अन्तिम बार दर्शन के लिए।

ब्रज॰—तुम्हारे सब योद्धा व सेवक कहां है?

प्र॰—उन सबको मैंने यहां से बिदा कर दिया है। वे लोग क्यो मेरे लिए जान दें?

ब्रज—आज तुम अवश्य गिरफ्तार हो जाओगी। तय कर चुकी हो?

प्र॰—अब बच कर क्या करूँगी? आपके दर्शन हो गये! अपने मन की

बाते सुना चुकी, आप मुझसे प्रेम करते हैं, यह मैं जान गई। मेरे पास जो कुछ धन था, उसे भी मैंने बाँट दिया है। अब प्राण बचाकर क्या करूँगी। मेरी कौन साध अब बाकी है? जान बचाने की कोशिश किसलिए करूँ?

व्रज०–यहाँ से बचकर मेरे घर चलो, मेरी घर गृहस्थी सम्हालो।

प्र०–यह क्या सच कह रहे हो?

व्रज०–तुमने मेरे सामने शपथ ली है, मैं भी तुम्हारे सामने शपथ लेकर कह रहा हूँ। आज यदि तुम अपने प्राण रखलो, तो मैं तुमको अपनी गृहिणी' बना कर रखूँगा।

प्र०–मेरे ससुर क्या कहेगे?

व्रज०–पिताजी को मैं समझा लूंगा।

प्र०–हाय! यह बात मैने कल क्यों नही सुनी?

व्रज०–कल सुन पाती, तो क्या होता?

प्र०–उस दशा मे मुझे गिरफ्तार करने की सामर्थ्य किसमें थी?

व्रज०–अब?

प्र०—अब कोई उपाय नहीं है। अपनी छाई हुई नाव मगाओ—निशि और दिवा को लेकर शीघ्र चले जाओ।

व्रजेश्वर ने अपनी छाई हुई नाव मंगाली। नाववाला पास आ गया तो व्रजेश्वर बोला—तुम लोग जल्दी भाग जाओ, वह देखो कम्पनी के सिपाहियों की नाव आ रही है। तुम लोगों को देखने से वे बेगार मे पकड लेगे। शीघ्र भाग जाओ, मैं न जाऊँगा, यहीं रहूँगा।

नाव के मल्लाह फिर बिना कुछ कहे उसी क्षण नाव खोलकर भाग खड़े हुये। व्रजेश्वर परिचित व्यक्ति थे, रुपये की कोई चिंता नहीं थी।

नाव को चले जाते देख प्रफुल्ल बोली—तुम नही गये?

व्रज—क्यों, तुम्ही मरना जानती हो मैं नही जानता! तुम हो मेरी स्त्री–मैं सौ बार तुम्हारा तिरस्कार कर सकता हूँ। किंतु मैं हूँ तुम्हारा पति–विपद् में मैं ही धर्मत: तुम्हारा सरक्षक हूँ। मैं रक्षा न करूँ। इसीलिए क्या विपत्ति के समय तुम को छोड़ कर कायरों की तरह भाग जाऊँ।

"तो इसलिए अब मैं स्वीकार करती हूँ कि प्राणरक्षा का यदि कोई उपाय

होगा तो मैं करूंगी ।" यह कहते कहते प्रफुल्ल ने आकाश के एक छोर पर निगाह फेंकी—जो कुछ उसने देखा, उससे मानो उसे ढाढस बंध गया। फिर उसी क्षण निराश होकर उसने कहा—किंतु मेरी प्राण रक्षा होने मे एक और आशका है ।

व्रज—वह क्या !

प्र० मैंने सोचा था कि यह बात आपको न बताऊंगी किंतु अब बिना बताये काम नही चलता । इन सिपाहियों के साथ मेरे ससुर हैं । मेरे गिरफ्तार न होने से उनके ऊपर भारी विपत्ति आ सकती है ।

ब्रजेश्वर सिहर उठे। सिर पर हाथ पटक कर बोले—क्या वे ही मुखबिर हैं?

प्रफुल्ल चुप ही रही । ब्रजेश्वर को कुछ भी समझना बाकी नही रहा । आज रात्रि के समय यहाँ देवी चौधरानी से भेंट हो सकेगी यह बात हरबल्लभ ब्रजेश्वर के मुँह से सुन चुके थे । ब्रजेश्वर ने और किसी से यह नही कहा था । देवी की भी जैसी गुप्त मन्त्रणा होती है, किसी दूसरे को उसे जान पाना असम्भव है । विशेषत देवी के इस घाट पर आने के पहले ही कम्पनी के सिपाही रगपुर से रवाना हो चुके थे, इसमे सन्देह नही है । नही तो इतनी जल्दी वे पहुंच नही पाते । और इसके पहले ही हरबल्लभ, अपने जाने का पता ठिकाना किसी से बिना कहे घर से चल दिये थे । आज तक वापस भी नही आये । सारी बात समझने मे उसे देर नही लगी । इसीलिए हरबल्लभ ने रुपया चुकाने का कोई उद्योग नही किया था । तथापि ब्रजेश्वर वह मन्त्र भूले नही थे ।

पिता स्वर्ग, पिता धर्मः पिता हि परम तपः ।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व देवता ।

ब्रजेश्वर ने प्रफुल्ल से कहा—मै मर जाऊँ तो भी कोई हानि नही है । तुम्हारे या मेरे मर जाने से पिता का कष्ट अधिक दुखदायी होगा । तुम्हारी प्राणरक्षा के पहले, मुझे अपने पिता को हर प्रकार बचाना पड़ेगा ।

प्र०-इसके लिए चिंतित होने की कोई बात नही है । मै बचूंगी नही इसलिए उनको कोई भय नही है । वे तुम्हारी रक्षा करना चाहे तो कर सकेंगे, किंतु यह भी तुम्हारी मनस्तुष्टि के लिए मैं स्वीकार करती हूँ कि उनके अमगल की आशंका होने से मैं अपनी रक्षा का कोई उपाय न करूंगी । आप कहे या न

कहे मैं स्वयं उस पर विचार रखूंगी। आप निश्चिन्त रहें यह बात देवी के हृदय से निकली थी। हरवल्लभ ने प्रफुल्ल का सर्वनाश कर दिया था, हरवल्लभ अब देवी का सत्यानाश करने में जुटा है; किंतु देवी ही उसकी मंगलाकांक्षिणी हैं क्योंकि प्रफुल्ल निष्काम चित्त है। जो निष्काम कर्म की राह पर चलता है, उसे इसकी परवाह कब रहती है कि किसने उसका अहित साधन किया है?

किंतु उसी समय तटवर्ती जगल के बीच से तुरही बजने की गभीर आवाज सुनाई दी। दोनों ही चौंक पड़े।

चौथा परिच्छेद

देवी रानी ने आवाज दी—निशि।

निशि छत के ऊपर आगयी।

देवी—वह किसकी भेरी है?

निशि—क्यों, दाढीवाले बाबा जी की मालूम पड़ती है, शायद?

देवी—रंगराज की?

निशि—हां।

देवी—यह क्या? मैंने रंगराज को आज प्रात: देवीगढ़ भेजा है।

निशि—जान पडता है, रास्ते से ही लौट आये है।

देवी—रंगराज को बुलाओ।

ब्रजेश्वर—भेरी की आवाज बहुत दूर से आई प्रतीत होती है। यहाँ से पुकारने से उस का सुनना कठिन है। मैं जाकर उसे बुला लाता हूँ।

देवी ने कहा—कुछ करना न पड़ेगा। आप नीचे जाकर जरा निशि का कौशल तो देखें।

निशि और ब्रज दोनों ही नीचे आगये। निशि ने नीचे जाकर एक बांसुरी निकाल ली। वह गीत-वाद्य मे बड़ी निपुण थी, उसकी वह शिक्षा राजभवन में हुई

थी। निशि ने ही देवी को वीणा बजाना सिखाया था। बांसुरी पर निशि ने मल्हार की तान छेड़ दी। शीघ्र ही रंगराज ने बजरे पर आकर, देवी को प्रणाम किया।

उसी समय व्रजेश्वर ने निशि से कहा—तुम छत पर चली जाओ। तुम्हारे सामने शायद वह कोई बात न छिपावेगा। जो भी बातें हों, सुनकर मुझे बताना।

निशि कमरे से बाहर चली आई किंतु तुरन्त ही वह फिर लौट आई और व्रजेश्वर से बोली—जरा बाहर आकर देखिये।

व्रजेश्वर ने गरदन बढा कर देखा। उसने देखा कि जगल के भीतर से असंख्य सैनिक वेशधारी निकल निकल कर बाहर आ रहे है। निशि से व्रज ने पूछा—वे कौन है? किस के सिपाही हैं?

निशि ने कहा—मालूम होता है कि वे हमारे बरकन्दाज हैं। रंगराज उन्हे लाया होगा।

देवी ने भी उस समूह को देखा, इतने ही मे रंगराज ने आकर प्रणाम किया। देवी ने पूछा—तुम यहाँ कैसे रंगराज?

रंगराज पहले चुप रहा। देवी ने फिर कहा—मैने सबेरे तुमको देवीगढ़ जाने को कहा था। वहा तुम क्यों नही गये? मेरी बात तुमने क्यों नही मानी?

रंग मैं देवीगढ जा रहा था, राह में महाराज जी से भेट हो गई।

देवी—भवानी ठाकुर से।

रंग—हा! उनके मुंह से मैंने सुना कि कम्पनी के सिपाही आपको पकडने आ रहे हैं। इसी कारण हम दोनो बरकन्दाजों को लेकर आ पहुँचे हैं। बरकन्दाजों को जगल मे छिपाकर मैं नदी के किनारे बैठा हुआ था, कम्पनी की नावें आते देख मैंने भेरी बजाकर अपने सैनिको को संकेत दिया है।

देवी—उस जंगल मे अंग्रेजों के सिपाही हैं!

रंग—उनको हमने घेर लिया है।

देवी—महाराज जी कहाँ है?

रंग—वे ही बरकन्दाजों को लेकर बाहर निकल रहे हैं।

देवी—कितने बरकन्दाज तुम्हारे साथ है?

रंग—कोई एक हजार होंगे।

देवी–शत्रु के सिपाही कितने है ?

रग –सुना है कि पाँच सौ है।

देवी–इन पन्द्रह सौ सिपाहियो मे युद्ध होने से कितने मरेंगे ?

रग—दो-चार सौ मर जायं तो कोई आश्चर्य नही ।

देवी–महाराज जी से जाकर कह दो और तुम भी कान खोल कर सुन लो कि तुम लोगो के इस आचरण से आज मुझे मर्मान्तिक पीडा मिली है।

रग—क्यो मां ?

देवी—एक तुच्छ स्त्री के प्राणो के लिए तुमने इतने व्यक्तियो को मार डालने की योजना की है—तुम लोगों को क्या जरा भी धर्म-विवेक नही है ? यदि मेरी आयु समाप्त हो गयी होगी तो मैं अकेली ही मरूंगी–मेरे लिये चार सौ आदमी क्यो जान देंगे ? मुझे क्या तुम लोगो ने ऐसी नीच समझ रखा है कि सैकडों व्यक्तियों की बलि दिला कर मै अपने प्राणों की रक्षा करूंगी।

रंग—आप के बच जाने से बहुतों की प्राणरक्षा होगी ।

देवी क्रोध व घृणा से अधीर होकर बोली–"छि"। उस तिरस्कार से रगराज ने मुंह नीचे झुका लिया–मन में सोचा–यह पृथ्वी फट जाती और मै उस मे समा जाता ।

देवी तब रोषपूर्ण भृकुटी चढा कम्पित अधरों से तिरस्कारकरती हुई कहने लगी, सुनो रगराज ! महाराज जी से जाकर कह दो, इसी क्षण सब बरकन्दाजो को लौटा ले जायें । आधे पल की भी देर होने से इसी नदी मे कूद कर प्राण दे दूंगी तम कोई भी मुझे बचा न सकोगे।

रगराज सहम गया। बोला–मैं जा रहा हूँ। महाराज जी से सब कुछ निवेदन कर दूंगा। मैं आप दोनों ही का आज्ञापालक व सेवक हूँ ।

रंगराज चला गया। निशि छत पर खडी होकर सब कुछ सुन चुकी थी । रगराज के चले जाने पर, उसने देवी से कहा–अच्छी बात है। अपने प्राणों के साथ तुम जैसा चाहो खेलवाड कर सकती हो किन्तु किसी अन्य को मना करने का अधिकर नही है। आज तम्हारे साथ तुम्हारे पति भी है–उनके लिए तुमने जरा भी नही सोचा ?

देवी–मै सब सोच चुकी हूँ बहन ! किन्तु उसका उपाय कुछ भी नही है। बस

जगदीश्वर का भरोसा है। जो होनहार है, होगा। किंतु जो भी होगा, निशि, एक बात निश्चित है ! अपने प्राण बचाने के लिए इतने मनुष्यो की बलि देने का अधिकार मुझे नहीं है। मेरे पति मेरे सर्वाधिक प्रिय हैं।

निशि ने मन ही मन देवी को धन्य-धन्य कहा। उसने सोचा, इसका निष्काम धर्म सार्थक है। इसके साथ प्राण देने मे भी सुख है।

निशि ने जाकर ब्रजेश्वर को सारी बाते सुनाई। ब्रजेश्वर इस समय प्रफुल्ल को अपनी स्त्री रूप मे न देख पाये। मन ही मन सोचने लगे-यथार्थ मे यह देवी ही है। मै बडा नीच हूँ, जो इसे डाकू कहकर इसकी भर्त्सना करने आया था।

इधर चार दिशाओ से पॉच नावे आकर बजरे के पास जा पहुँची। प्रफुल्ल ने उस तरफ निगाह भी नही की। पत्थर की बनी मूर्ति की तरह बिना हिले-डुले छत पर बैठी रही। प्रफुल्ल नावो को मानो देख ही न रही हो—बरकन्दाजो को नही देख रही थी। बहुत दूर आकाश के छोर पर उसकी दृष्टि जमी थी। आकाश के छोर पर एक छोटा सा बादल का टुकड़ा बडी देर से दिखाई पड़ रहा था। प्रफुल्ल उसी को एक टक निहार रही थी। देखते-देखते वह कुछ बडा होगया। तब "जय जगदीश्वर कहती हुई प्रफुल्ल छत से नीचे उतर आयी।

प्रफुल्ल को भीतर आते देख निशि ने पूछा—अब तुम क्या करोगी ?

प्रफुल्ल ने कहा—अपने पति को बचाऊँगी।

निशि—और तुम ?

देवी—मेरी बात तुम मत पूछो। मै जो कुछ कहती हूँ, जो कुछ करती हूँ। तुम बड़ी सतर्कता से उसमे पूरा सहयोग दो। तुम्हारे और मेरे भाग्य में जो कुछ भी हो, मेरे पति को बचाना होगा। दिवा और मेरे ससुर को भी बचाना होगा।

यह कह कर देवी ने एक शंख उठाकर बजा दिया। निशि बोली—यह भी अच्छा ही है।

देवी ने कहा—अच्छा है या बुरा विचार करके देखो। जो-जो करना होगा सब तुमको बता रही हूँ। तुम्हारे ऊपर सब कुछ निर्भर है।

———

पाँचवाँ परिच्छेद

देवी के सैनिक चीटियो की तरह कतार बाँध त्रिस्रोता के किनारे के जगलों मे बाहर निकलने लगे। सिर पर लाल पगढी बाँधे, कमर में कछनी कसे, नगे पाव—जल मे लडाई करने के लिए तैयार होकर, हाथो में ढाल बर्छे लिए—किसी-किसी के पास बन्दूक, किंतु बहुत कम अगरिणत सिपाही आने लगे। सबकी पीठ पर लाठिया कसी थी। यही है बंगाल का जातीय हथियार। बगाली इसका सही उपयोग जानता था। आज लाठी का तिरस्कार कर देने से ही बगाली निकम्मा और मुर्दा हो गया है।

बरकन्दाजो ने देखा कि नावे आ पहुँची है। बस बजरे को घेर लेने भर की देर है। लहमे भर मे बरकन्दाज दौड पड़े। "रानी जी की जय" कहकर वे लोग भी बजरे को घेरने के लिए लपके। उन लोगों ने आकर पहले बजरे को घेर लिया, नावो ने उन्हे आ घेरा। और ज्योंही शख बजा, ठीक उसी समय कई बरकन्दाज आकर बजरे के ऊपर चढ़ गये। वे थे बजरे के मल्लाह—नावो पर काम करते थे, जरूरत पडने पर लाठी-भाला भी चलाते। उन लोगो ने जरा भी युद्ध करने की इच्छा नही दिखाई। कोई डाँड के पास बैठ गया। कोई पतवार के पास। कोई पाल का रस्सा पकड़ कर, कोई लग्गी लेकर, जिसका जो स्थान था, वही वह बैठ गया। और भी अनेक बरकन्दाज बजरे पर चढ गये। तीन-चार सौ बरकन्दाज नदी के तट पर रह गये—उसी स्थान से नावों पर भाले चलाने लगे। कितने ही सिपाहियो ने नावों से उतर कर बन्दूकों में संगीन लगाकर उनके ऊपर आक्रमण कर दिया। जो बरकन्दाज बजरे को घेरे खड़े थे, कुछ सिपाही उनके ऊपर टूट पड़े। हर तरफ हाथो हाथ लडाई होने लगी। चारो ओर मारपीट चिल्लाहट-पुकार, बन्दूको की धाँय-धांय, लाठियो की पटापट से भारी कोहराम मच गया। कोई किसी की बात नही सुन सकता था न कोई किसी स्थान में स्थिर हो सकता था।

दूर से लड़ाई होने पर सिपाहियों के सामने लठैत ज्यादा देर तक टिक नहीं सकते थे—क्योंकि लाठी दूर तक नही मार कर सकती। किंतु नाव पर होने के कारण सिपाहियों को बड़ी असुविधा हुई। जो सिपाही किनारे पर जाकर

युद्ध कर रहे थे, वे लठैतो को सगीनो के सहारे हटाने लगे, किंतु जो सिपाही जल मे लडाई कर रहे थे, वे बरकन्दाजो की लाठी बर्छी के प्रहार से हाथ पैर, सिर तोडवा कर बेबस हाने लगे।

देवी के नीचे आने के तत्काल बाद ही यह उपद्रव शुरू हो गया था। देवी ने समझा कि या तो भवानी ठाकुर के पास मेरी बात पहुँची नही है— अथवा उन्हो ने मेरी बात नही मानी। वे शायद समझते है कि मैं मर नही सकती। अच्छा तो मेरा काम भी देख ले।

देवी के शिक्षाकाल मे उनमे कई गुण अपूर्व उत्पन्न हो गये थे। उनमे से एक यह था कि जिस सामग्री की किसी समय जरूरत पड सकती है, उसे पहले से ही वह अपने पास रख लेती थी। इसका परिचय बहुत बार मिल चुका है। देवी इस समय अपने पास ही एक सफेद झंडा पा गयी, उसे बाहर ले जाकर उन्होंने अपने हाथ से हवा मे फहरा दिया।

उस झडी को देखते ही लडाई एकदम बन्द हो गई। जो जहा था, वह वही अपना हथियार डाल कर चुपचाप खडा रह गया। आँधी, तूफान मानो एकाएक बन्द हो गया, प्रमत्त सागर अकस्मात् शात सरोवर बन गया। देवी ने देखा कि पास ही ब्रजेश्वर खडे है। युद्ध के समय देवी को बाहर आते देख, ब्रजेश्वर भी साथ-साथ चले आये थे। देवी ने उनसे कहा—तुम इस झण्डी को इसी तरह पकड़े रहो। मैं भीतर जाकर निशि और दिवा के साथ कुछ परामर्श करूंगी। रंगराज यदि यहा आ जाय, तो उससे कह देना कि दरवाजे पर खडा रहे और मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा करे।

यह कह कर देवी ब्रजेश्वर के हाथ मे सफेद झंडा पकडा कर चली गयीं। ब्रजेश्वर झडी ऊपर उठाये खडे रहे। इसी बीच वहाँ रंगराज आ पहुँचा। ब्रजेश्वर के हाथ में सफेद झण्डी देख रंगराज ने आखे तरेर कर कहा—तुम ने किसकी आज्ञा से सफेद झण्डा फहराया है।

ब्रज—रानी जी की आज्ञा से।

रंग—रानी जी की आज्ञा है? कौन हो तुम?

ब्रज—पहचानते नही।

रंगराज ने जरा गौर से देखकर कहा—पहचान गया। ब्रजेश्वर बाबू?

यहां क्या घात है ? बाप बेटा एक ही काम मे लगे हो क्या। अरे कोई इसे बांधो तो।

रंगराज की धारणा हुई कि हरवल्लभ की तरह देवी को गिरफ्तार करा देने के लिए ब्रजेश्वर भी किसी बहाने बजरे मे घुस आया है। आज्ञा पाकर दो आदमियो ने आकर ब्रजेश्वर को बांध लिया। ब्रजेश्वर ने आपत्ति नही की। उन्होने कहा–मुझे बाध रहे हो कोई हर्ज नही है। किंतु एक बात यह बतलाओ कि झण्डी देखते ही दोनो दलो ने युद्ध क्यो बन्द कर दिया !

रंगराज ने कहा—क्या छठूले बन रहे हो ? क्या तुम नहीं जानते कि सफेद झंडा दिखाने से अंग्रेज लडाई तुरन्त बन्द कर देते है।

ब्रज–यह मैं नही जानता था। यह काम मैंने जान या अनजान में कर डाला है अथवा मैंने रानी जी की आज्ञा से सफद झंडी दिखाई है या अपने मन से, किंतु तुमको यह आज्ञा मिली है कि तुम दरवाजे पर ही खड़े होकर रानी जी का हुकुम सुन लेना।

रंगराज कमरे के दरवाजे तक चला गया। यह देखा कि दरवाजा बन्द है, रंगराज ने पुकारा—रानी मा ?

भीतर से उत्तर आया—कौन है, रंगराज ?

रंग०–जी हां, एक सफेद झंडी हमारे बजरे से दिखाई गई है–अतः लड़ाई बन्द हो गई है।

भीतर से उत्तर आया—यह मेरी ही आज्ञानुसार हुआ है। तुम यह सफेद झण्डी लेकर लेफ्टिनेण्ट साहब के पास जाओ। जाकर कहो कि लडाई की जरूरत नही है, मैं गिरफ्तार हो जाऊंगी।

रंग०—मेरा शरीर रहते यह किसी तरह भी न होगा।

देवी—प्राण देकर भी तुम मेरी रक्षा न कर सकोगे।

रंग—तो भी मैं अपना बलिदान दूंगा ही।

देवी—सुनो, मूर्ख की तरह प्रलाप मत करो–सिपाहियों की बन्दूकों के सामने लाठी डडा क्या करेगा ?

रंग०–क्या न करेगा ?

देवी–अच्छा जो भी करे–अब एक बूंद भी रक्त गिरने के पहले मैं प्राण द दूंगी, बाहर जाकर गोली के सामने खड़ी हो जाऊंगी, रोक न सकोगे।

अन्यथा इस समय मैं गिरफ्तार हो जाती हू आगे निकल भागने की चेष्टा होगी।। नीति यही है कि इस समय अपने प्राणों की रक्षा कर लो और सुविधा के अनुसार फिर मुझे छुडाने का उद्योग करते रहो। अपने पास अपार धनराशि है। कम्पनी के सभी आदमी रुपये से खरीदे जा सकते हैं। इसमे कठिनाई की क्या बात है ?

देवी ने क्षण भर के लिए भी घूस देकर भागने का विचार नही किया था। ऐसी उनकी इच्छा जरा भी नही थी। यह तो केवल रंगराज को बहकाने के लिए था। उनके मन मे जो गम्भीर कौशल संकल्पित हो गया था, उसको समझने की सामर्थ्य रंगराज मे नही थी इसलिए उन्होने रंगराज को पूरी बात नही समझाई। चुपचाप अग्रेज के हाथ गिरफ्तार हो जाने का निश्चय वह कर चुकी थी किंतु वे जानती थी कि अंग्रेज कुबुद्धि से सब खो देगा। उन्होंने शत्रु को सतर्क करने का भी निश्चय किया था। पति, ससुर, सहेलिया सब के उद्धार के लिए जो कुछ होना था देवी के मस्तिष्क मे सब आइने की तरह स्पष्ट था।

रंगराज ने कहा—जो धन देकर आप कम्पनी के लोगों को वश मे करेगी, वह तो बजरे मे ही है। आप गिरफ्तार हो जायँगी तो अंग्रेज बजरा भी लेलेंगे।

देवी–तुम उन्हे मना कर देना। कह देना कि मै गिरफ्तार हो जाऊँगी, किंतु बजरा न दूंगी। बजरे मे जो लोग है, उनमे से किसी को भी वे गिरफ्तार न करने जावेगे। इस शर्त पर मैं गिरफ्तार हो जाने को राजी हूँ।

रंग—यदि अंग्रेज यह न माने, बजरे मे आकर लूट मार करने लगे ?

देवी—यह भी मना कर देना कि बजरे मे न आवे, बजरे को छूये भी नही। समझा देना कि शर्त तोडने से वह विपद् मे पड जायंगे। बजरे को छूने से मै कैद न होऊंगी! बजरे पर उनके चढते ही युद्ध आरम्भ हो जायगा, यह जान लें। मेरी शर्तें वे स्वीकार कर लें तो किसी को यहा आना न पडेगा, मैं स्वयं उनकी नाव मे चली जाऊंगी।

रंगराज समझ गया, इसके भीतर कोई गहरी चाल है, दून का कार्य उसने स्वीकार कर लिया। तब देवी ने पूछा—भवानी ठाकुर कहा है ?

रंग–वे नदीतट पर बरकन्दाजो को लेकर युद्ध कर रहे है। मेरी बात उन्होने नही मानी। सम्भवत: अभी तक वे वही है।

देवी–उनके पास तुम फौरन जाओ। कह दो कि सभी बरकन्दाजो को ले नदी

के किनारे-किनारे अपने स्थान को चले जायँ। कह देना कि मेरे बजरे के आदमियों को छोड़ जाना ही यथेष्ट होगा। यह भी कह देना कि मेरी रक्षा करने के लिए अब युद्ध की जरूरत नही है—मेरी रक्षा का उपाय भगवान ने कर दिया है। इस पर यदि वे आपत्ति करे तो उनसे कह देना कि आकाश की तरफ नजर उठा कर देखें; सब समझ जायंगे।

रंगराज ने तब स्वय आकाश की तरफ नजर उठाकर देखा। देखा कि वैसाखी नव-नीरदमालाओं से आकाश में अँधेरा छा गया है।

रंगराज ने कहा—मा! मैं एक और आज्ञा चाहता हूँ। हरबल्लभ राय आज का मुखबिर है। उसके लड़के ब्रजेश्वर को मैंने बजरे पर देखा है। मुझे उस पर बड़ा सन्देह है। मै उसको बाँध कर रखना चाहता हूँ।

यह सुन निशि और दिवा खिलखिला पडी। देवी ने कहा—उन्हें बाँधो मत! अभी चुपचाप छत पर छिपे रहने को कह दो। बाद मे दिवा के नीचे उतरने का हुकुम देने पर नीचे उतरें।

आदेशानुसार रंगराज ने ब्रजेश्वर को छत पर बैठाल दिया। फिर भवानी ठाकुर के पास जाकर देवी का आदेश सुना दिया।

रंगराज ने बादलों की ओर दिखाया—भवानी ने देखा। फिर बिना कोई आपत्ति किए सभी बरकन्दाजों को एकत्र कर त्रिस्रोता के किनारे किनारे अपने स्थान को जाने लगे।

इसी समय दिवा और निशि बाहर आकर माझियो के वेश में बैठे बरकन्दाजों के कान में चुपके चुपके कुछ कह गयी।

छठा परिच्छेद

भवानी ठाकुर को बिदा कर रंगराज ने सफेद झंडा अपने हाथ मे ले लिया। फिर जल में उतर वह लेफ्टिनेंट साहब की नाव मे जा पहुंचा। सफेद झंडा उसके हाथ में देख किसी ने कुछ नही कहा। नाव मे पहुँचने पर साहब ने उससे कहा—टुम लोग सफेद झण्डा दिखाया हाय गिरफ्टार होगा?

रग—हम लोग क्यो गिरफ्तार होगे ? जिनको आप पकडने आये है, वे ही गिरफ्तार हो जायेगी, यही मैं कहने आया हूँ।

साहब—डेवी चौडरानी गिरफ्टार हो जायंगी ?

रग—जी हाँ, हो जायँगी। यही कहने के लिए उन्होंने मुझे भेजा है।

साहब—बाकी सब लोग ?

रंग—और लोग कौन ?

साहब—डेवी चौडरानी का गरोह का लोग ?

रग—हम लोग गिरफ्तार न होगे।

साहब—हम पूरा गराह को गिरफ्टार करने आया है।

रग—इन हजारो बरकन्दाजो मे से पहचानियेगा कैसे ?

जिस समय रगराज साहब से बात कह रहे थे, उसी समय भवानी ठाकुर बरकन्दाज सैन्य लेकर जाने का उद्योग कर रहे थे। साहब ने कहा—"ये हजारों आडमी सभी डाकू हाय, ये सब लुटेरों का साठ सरकार के खिलाफ लड रहा हाय।

रग—वे लोग अब न लडेगे, वह जा रहे है, देखिये !

साहब ने देखा, बरकन्दाज सेना भागी जा रही है। साहब ने गरज-तडप कर कहा—ये क्या, टुम लोग सफेद झडी से धोखा डेकर भागा जाता हाय ?

रग—साहब, तुमने हमे पकडा ही कब था जो हम भागे जा रहे है ? अभी तक तो कोई भागा नही है। पकड सको तो पकडो। सफेद झडा फेक रहा हूँ।

इतना कह रगराज ने झडा फेंक दिया, किन्तु साहब की आज्ञा न पाने से सैनिक निश्चेष्ट खडे रहे।

साहब सोच रहे थे, इन लोगों के पीछे दौडना व्यर्थ है। पीछे हटते-हटते ये लोग घने जँगल मे घुस जायँगे। एक तो रात्रि का समय तिस पर बादल घिरे हैं, जगल मे घोर अन्धकार है। मेरे सिपाही रास्ता भी नही पहचानते, लुटेरे रास्ते से खूब परिचित है। इसलिए उनको पकड़ना सिपाहियों के बस मे नहीं है अतः साहब ने यह इरादा छोड दिया, कहा—जाने दो, हाम उनको नेई चाहटा। जो बाट हो रही थी सुनो; टुम सबको गिरफ्टार होना होगा ?

रँग—एक भी नही, सिर्फ देवी रानी जायँगी।

साहब—पीस ! अब लड़ाई करेगा कौन ? ये थोड़ा सा आडमी हमारा पाँच

सो सिपाहियो का मुकाबला कैसे करेगा ? टुम्हारा बरकन्दाज फौज तो जंगलों मे भाग गया हाय !

रगराजने देखा, सचमुच ही भवानी ठाकुर की सेना जगलमे गायब हो गयी है।

रंगराज बोला—मै यह नही जानता। मैं देवी रानी का संदेश देने आया हूँ। बस, आप न तो बजरा पाइयेगा, न बजरे मे रखा धन ही आपको मिलेगा, देवीरानी के अतिरिक्त और किसी को भी आप पकड न पाइयेगा।

साहब—क्यो ?

रग—यह मै नही जानता।

साहब-बको मट ! बजरे पर हमारा कब्जा हाय है, हाम उसको डखल करेगा।

रग—साहब, बजरे पर मत चढना, उसे मत छूना वरना आफत मे पड जाओगे।

साहब—डैम ! पाँच सौ फौज के रहटे टुम लोगों का डो-चार आडमी क्या आफट करेगा ?

यह कह कर साहब ने सिपाहियों को हुक्म दिया—बजरे को घेर लो।

सिपाहियो ने बजरे को घेर लिया। तब साहब ने कहा—बजरे पर का बडमाशो का हठियार छीन लो।

यह हुकुम साहब ने ऊँचे स्वर से दिया, जिसे देवी ने भी सुन लिया। देवी ने भी बजरे के भीतर से उच्च स्वर से हुक्म दिया—बजरे मे जिसके-जिसके हाथ मे हथियार हो, सभी जल मे फेक दो।

सुनते ही, बजरे मे जिसके-जिसके हाथ में हथियार थे, सभी ने जल में फेंक दिये। रगराज ने भी हथियार जल मे फेक दिये। यह देख साहब सन्तुष्ट हो गये, बोले—चलो, बजरे मे चल कर देखें क्या है ?

रग—साहब आप जबर्दस्ती बजरे मे जा रहे हैं; फिर मेरा दोष नही है।

सा०— चुप रहो ?

यह कह कर साहब केवल एक सिपाही को साथ ले हाथ में पिस्तौल लिये बजरे में चले गये। यह कोई बड़े साहस का काम नहीं था, क्योंकि बजरे मे जो इने गिने आदमी थे, सभी ने अस्त्र फेंक दिये थे साहब नही जानता था कि देवी स्थिर बुद्धि ही महास्त्र है। उन्हे दूसरे अस्त्र की आवश्यकता नहीं।

साहब रंगराज के साथ कमरे के दरवाजे पर आये। दरवाजा तत्क्षण खुल गया।

दोनों भीतर गये। वहां का दृश्य देख साहब चौंधिया गया, रंगराज भी विस्मित था।

दोनों ने देखा कि जिस दिन ब्रजेश्वर कैद कर बजरे में लाये गये थे, आज भी उस दिन जैसी ही इसकी मनोहर सजावट थी। दीवारों पर वैसे ही आकर्षक चित्र हैं। मखमली कामदार गलीचा बिछा है। इत्रदान गुलाबपाश पनडब्बा सोने की डोलची के महकते फूल, सोने के गड़गड़े पर कस्तूरी से सुवासित तमाखू, सारा ठाठ वैसा ही है। जलते दीपक लिये चाँदी की पुतलियाँ, झाड फानूस, सोने की जजीर मे लटकता हुआ प्रदीप सब कुछ है। हाँ आज मसनदे एक नही दो हैं. उन पर सोने के तारों से कढी तकियो के सहारे दो सुन्दरिया बैठी हैं। बहुमूल्य वस्त्र तथा अग-प्रत्यग मे रत्नाभूषण लदे है। साहब तो देवीको पहचानता न था—रंगराज पहचान गया कि एक हैं निशि और दूसरी हैंदिवा। साहब के बैठन केलिए चाँदी की कुर्सी रक्खी थी। साहब उसपर बैठ गये। रंगराज की आखें देवीरानी को खोजने लगी। एक कोने मे देवी साधारण वेश में मोटे गाढ़े की धोती पहने खड़ी हैं, हाथ मे केवल कंगन है। बाल बिखरे हुये हैं, सजावट का नाम भी नही है।

साहब ने पूछा—देवी चौडरानी कौन हाय?

निशि ने कहा—मुझ से बातचीत कीजिये; मैं हू देवी।

दिवा हँस पडी, बोली—यह क्या साहब से मजाक करने का समय है! लेफ्टिनेण्ट साहब! मेरी यह बहन कुछ हँसोड है, किन्तु यह समय हँसी मजाक का नही है। आप मुझ से बात चीत करें मै हूँ देवी चौधरानी।

निशि कहने लगी—अरे यह तो अजीब आफत है! तू क्या मेरे लिए फाँसी चढना चाहती है? साहब की तरफ घूम कर निशि बोली—साहब, यह मेरी बहन है—शायद स्नेहवश मुझे बचाने के लिऐ आपको चकमा दे रही है, किन्तु मैं कैसे झूठ बोल कर बहन को खतरे मे डाल अपनी जान बचा लूँ? जान मामूली चीज है, हम बंगाली लडकियाँ क्लेश अनुभव किये बिना ही उसे छोड़ सकती हैं। चलिये मुझे ले चलिये! मैं चलूँगी। मैं ही देवी रानी हूँ।

दिवा ने कहा—साहब! तुमको तुम्हारे ईसामसीह की कसम, उस बेकसूर को मत पकड़ ले जाना। देवी मै हूँ।

साहब ने झुँझला कर रंगराज से पूछा—यह क्या मजाक हाय? कौन हाय डेवी चौडरानी, टुम सच-सच बोलो?

रंगराज कुछ समझ न सका, इतना समझ गया कि इसमे कोई गहरी चाल है। बुद्धि से विचार कर उसने निशि की तरफ इशारा कर कहा—हुजूर! यही है असल देवी रानी।

तब देवी ने मुँह खोला। बीच मे बात काटने का अपराध क्षमा करें। कौन जाने बाद मे झूठी बात खुल जाने से सभी की जान जाय, इसीलिए मैं बतलाती हूँ कि इसने जो कुछ कहा है, सच नही है। निशि को दिखाकर बोली—यह देवी नही है। यह आदमी रानी जी को मा कहकर पुकारता है, मा की तरह उनकी भक्ति करता है, अतः उन्हे बचाने के लिए वह झूठ बोल रहा है।

तब साहब ने कडक कर पूछा—टब डेवी कौन हाय।

देवी ने कहा—मैं हूँ देवी चौधरानी।

देवी के इतना कह देने से, निशि, दिवा, रंगराज और देवी के बीच विचित्र स्थिति पैदा हो गयी। निशि कहती है, मै हूँ देवी! दिवा अपने को देवी कहती है। रंगराज निशि को देवी कहता है। देवी ने सच कह दिया मै देवी हूँ। सब मिलकर एक गोरखधंधा बन गया।

आखिर लेफ्टिनेण्ट साहब ने सोचा, इस रहस्य का पता लगा लेना ही आवश्यक है, बोला—टुम दोनो मे से कोई जरूर ही डेवी हाय! वह टो नौकर हाय वह डेवी नेई हाय। डाकू औरट कौन हाय, टुम लोग चालाकी करके बच नेई सकटा। हाम टुम दोनों को पकड़ ले जायगा। केस होने पर जो चौडरानी सावित होगा, उसे फासी डेगा। अगरठीक पटा नेई लगेगा तो टुम डोनो को फासी देगा

तब निशि और दिवा दोनो ने ही कहा—इतना परेशान होने की जरूरत ही क्या है? आपका मुखबिर बता सकेगा कि कौन असल देवी चौधरानी है।

हरबल्लभ को बजरे से बुलाना ही देवी का उद्देश्य था। हरबल्लभ की रक्षा की व्यवस्था किये बिना देवी आत्मरक्षा का उपाय न करेंगी, यह निश्चत था। उनके बजरे मे लाये बिना उनकी सुरक्षा की निश्चयता नही थी।

साहब ने सोचा कि बात तो ठीक है। साथ के सिपाही से उन्होंने कहा—मुखबिर को बुलाओ। सिपाही ने नाव के एक जमादार से पुकार कर कहा—मुखबिर को यहाँ भेजो। कई सिपाही मुखबिर को पुकारने लगे। मुखबिर कहाँ है, कौन है, इसकी जानकारी किसी को नही थी।

सातवां परिच्छेद

हरवल्लभ राय संयोगवश युद्धक्षेत्र मे ही उपस्थित थे। पहले वे युद्ध के बहुत निकट नही आये, "शृंगिणा शस्त्रपाणिनाम्" इत्यादि कौटल्लीय सदुपदेश का स्मरण कर वे सिपाहियो की नाव पर नही चढे थे। एक डोंगी मे चढकर उन्होने लेफ्टिनेण्ट साहब को बजरा दिखा दिया और स्वय आधा कोस दूर जाकर अपनी प्राण रक्षा कर रहे थे। उसी के बाद उन्होने देखा कि आकाश मे काली घटा छायी हुई है। ऐसा प्रतीत हुआ मानो तूफान आ रहा हो। इसी क्षण यह डोंगी डूब जायगी। रुपये के लोभ मे मै प्राण खो दूंगा, अन्तिम संस्कार भी न होगा। तब वे डोंगी से उतर किनारे पर चले गये। किन्तु वहा भी किसी को न देख वे बहुत ही डर गये। सांप, चोर-डाकुओ, भूत, प्रेत सभी का भय सताने लगा। हरवल्लभ को अपनी मूर्खता पर रुलाई आ गयी।

ऐसे ही समय मे हठात् बन्दूकों की धाय-धाय, सिपाही बरकन्दाजों का कोलाहल सब बन्द हो गया। हरल्लभ को जान पडा, मानो अवश्य ही अंग्रेजो की विजय हो गयी है। वह डाकू औरत गिरफ्तार हो गयी है अन्यथा लडाई क्यों बन्द हो जाती? तब हरवल्लभ ने युद्ध स्थान मे जाने का साहस किया! किन्तु इस घटाटोप अँधेरी रात मे, भयानक जगल के बीच वे कैसे आगे कदम बढाते; डोंगी के माझी से उन्होंने पूछा—क्यो माझी भैया—उस तक कैसे चला जाय कोई उपाय बता सकते हो?

माझी बोला—इसकी कौन फिकर है बाबू जी? डोंगी पर चढ आइये अभी ले चलता हूँ। सिपाही मारेंगे पकडेगे तो नही? कही फिर न लडाई छिड़ जाय?

हर—सिपाही हम लोगों से कुछ भी न बोलेगे। लडाई अब न छिडेगी—वह डकैत कैद हो चुकी है। किन्तु घटा ऐसी छायी है कि जैसे अभी ही तूफान आने वाला हो। डोंगी पर कैसे चलूं?

माझी बोला—डोंगी तूफान मे कभी नही डूबती।

हरवल्लभ ने पहले उसकी बातो पर विश्वास नही किया—किन्तु अन्त में वे डोंगी पर चढ़ गये। माझी को वे समझाने लगे, किनारे-किनारे डोंगी ले चलो। माझी ने वैसा किया। डोंगी शीघ्र ही बजरे तक पहुँच गयी। हरवल्लभ

सिपाहियों का संकेत समझते थे, इसलिये सिपाहियों ने आपत्ति नहीं की।

उसी समय मुखबिर की पुकार हो रही थी। हरवल्लभ ने बजरे पर चढ साहब के अर्दली से कहा—मैं हूँ मुखबिर। कहो क्या है ?

सिपाही बोला—तुमको कप्तान साहब ने बुलाया है।

हर०—वे कहाँ हैं ?

सिपा०—कमरे के भीतर, तुम भी भीतर आओ।

यह जान कर कि हरवल्लभ आ रहे हैं, देवी वहाँ से खिसकने का उद्योग करने लगी।

कप्तान साहब के लिये कुछ जलपान का प्रबध करूँ यह कह कर वह भीतर के कमरे में चली गयी।

हरवल्लभ कमरे की ओर गये। कमरे के दरवाजे पर पहुँच कर कमरे की सजावट, उसका ऐश्वर्य, दिवा और निशि का रूप और शृंगार देख हरवल्लभ चकित हो गये। साहब को सलाम करना भूल कर उन्होने निशि को सलाम कर दिया। निशि ने हँसते हुए कहा—बन्दगी साहब ! मिजाज शरीफ।

सुनकर दिवा ने कहा—बन्दगी खां साहब ! मेरे लिए आदाब नहीं बजाया, मैं हूँ देवी चौधरानी।

साहब ने हरवल्लभ से कहा—ये डोनो मुझसे फरेब करटा हाय, सब अपने को डेवी चौडरानी कहटा है। दोनो मे कौन डेवी चौडरानी हाय, यह पहचानने का वास्टे हाम टुमको बुलाया हाय। कौन हाय ?

हरवल्लभ बड़े चक्कर मे पड गये। उनके चौदह पुश्तो मे से किसी ने देवी को कभी नही देखा था। क्या करें इसी असमंजस मे उन्होने निशि की ओर इशारा कर दिया। निशि ठहाका मार कर हँस पडी। घबड़ा कर, 'ओह ! 'भूल गया' कह कर हरवल्लभ ने दिवा की ओर उँगली उठा दी। दिवा खिलखिला पड़ी। उदास हो हरवल्लभ ने फिर निशि को दिखा दिया। तब साहब झल्ला उठा, और हरवल्लभ से डपट कर बोला–टुम बडमाश–सुअर हाय ! टुम पहचानता नेई ?

तब दिवा बोली—साहब आप गुस्सा न करे। वे नही पहचानते, उनका लड़का पहचानता है। उनका लड़का बजरे की छत पर बैठा हुआ है, उसको बुलवाइये वह पहचान लेगा।

हरवल्लभ आश्चर्य से सन्न हो गया। बोला—मेरा लड़का।

दिवा—सुनती तो ऐसा ही हू।

हर०—ब्रजेश्वर ?

दिवा—हाँ ! वे ही।

हर०- कहा है ?

दिवा—छत पर।

हर०—ब्रज यहाँ कैसे ?

दिवा—वे ही बतावेगे।

साहब ने व्रजेश्वर को लाने का हुकुम दिया। दिवा ने रंगराज को इशारा किया। रंगराज ने छत पर जाकर व्रजेश्वर से कहा—चलो, दिवा ठकुरानी का हुकुम है।

ब्रजेश्वर उतर कर कमरे के भीतर आये। देवी ने पहले ही कह दिया था कि दिवा की आज्ञा पाते ही व्रजेश्वर छत से नीचे उतर आवेगे। देवी की व्यवस्था ऐसी ही चौकस होती थी।

साहब ने व्रजेश्वर से पूछा—टुम डेवी चौडरानी को पहचानटा हाय ?

ब्रज—पहचानता हूँ।

साहब—डेवी कौन हाय ?

ब्रज०—कोई नही।

साहब ने तब आवेश मे आकर कहा—क्या बकटा हाय ? इन मैं से एक भी वह डाकू नेई हाय ?

ब्रज०—ये दोनो उनकी दासियाँ है।

साहब—ए: ! टुम उसको पहचानटा हाय !

ब्रज०—अच्छी तरह पहचानता हूँ।

सा०—अगर इनमे वह नेई हाय टो वह जरूर इसी बजरे मे कही छिपी होगी। वही नौकरानी डेवी होने सक्टा हाय ! हम बजरे का तलाशी लेगा—टुम उसका शिनाख्त करेगा ?

व्रज०—साहब, बजरे की तलाशी लेना हो तो लीजिये मै शिनाख्त क्यो करूं ?

साहब विस्मित होकर गरज उठा, बोला—क्यो बडमाश ? टुम मुखबिर नेई हाय ।

"नही", कह कर ब्रजेश्वर ने साहब के गाल पर बड़े जोर से एक थप्पड़ जमा दिया ।

यह क्या किया, अरे क्या किया ? हाय सर्वनाश, कह कर हरवल्लभ रो पडा । हुजूर तूफान आ गया, कह कर जमादार ने बाहर से आवाज दी । सों सो करती आकाश के छोर से प्रबल वेग से गरजती वायु की आवाज सुनाई पडी । ठीक उसी क्षण, जिस समय कि गाल पर ब्रजेश्वर का थप्पड पड़ा था, कमरे के भीतर से शख बज उठा ।

बजरे का लंगर गिराया नही गया था, यह बात मैं पहले ही कह चुका हूँ, खूंटे से रस्सा बंधा था, खूंटे के पास दो नाविक बैठे थे । ज्यों ही शख बजा, त्योंही वे लोग रस्सा खोल कूदकर बजरे पर चढ गये । जिन सिपाहियो ने बजरे को घेर रखा था, उन्होने उन्हे मारने के लिए संगीनें उठायीं, किन्तु बन्दूकें उठी की उठी ही रह गयी, पलक मारते-मारते एक बहुत बडी घटना हो गयी । देवी के कौशल से पल भर में कम्पनी के पाँच सौ सिपाही परास्त हो गये ।

पहले ही लिख चुका हूँ कि चार पाल पहले मे ही तान दिये गये थे । यह भी कह चुका हूं कि बीच मे निशि आकर नाविकों से चुपचाप कुछ कह गयी थी । उसके अनुसार ही खूंटे के पास आदमी बैठे थे और उसी के अनुसार पाल के रस्सों के पास नाविक जो बैठे थे, शंख की आवाज सुनते ही उन लोगों ने पाल के सभी रस्सों को खीच लिया । माझी ने पतवार पकड ली । उसी क्षण वह प्रचण्ड आंधी आकर चारो पालो पर टकरायी। बजरा घूम गया—सिपाहियों की उठी संगीनें उठी ही रह गयी—बजरे का मुख घूमकर पचास हाथ आगे चला गया । बजरा घूमने के बाद तूफान के झोंके से एक तरफ को झुक गया । डूब जाने की सी स्थिति हो गयी । लिखने मे इतना समय लगा, किंतु सारी घटना पलक मारते हो गयी । ब्रजेश्वर के थप्पड के बदले में साहब ने घूसा ताना ही था कि ये सब घटनाएं हो गयीं । मुक्का उठा ही था कि बजरा झुक गया, और साहब लुढ़क कर मुट्ठी बाँधे दिवा सुन्दरी के पैरो के पास जा गिरे । ब्रजेश्वर खुद साहब की गरदन पर जा पड़ा—और रंगराज उसके ऊपर । हरवल्लभ

पहले निशि ठकुरानी की गरदन पर गिर पड़े, वहा से पैर फिसल गये और लुढकते-लुढकते वे रंगराज के नगोरे जूते से जा टकराये। वे समझ गये कि बजरा डूब गया। सभी की मृत्यु निकट है। अब दुर्गा नाम जपना भी व्यर्थ है?

किंतु बजरा डूबा नही, झुकने के बाद वह फिर सीधा हो गया, हवा के वेग मे तीर की सी गति से वह दौड चला। जो लोग गिर पडे थे, वे फिर सीधे खडे हो गये—साहब ने फिर घूसा ताना। किंतु साहब के सिपाही जल मे खड़े थे, उनको रौदता हुआ बजरा निकल गया। बहुतो ने गोता लगाकर प्राण रक्षा की, कोई दूर से बजरे को घूमते देख जान बचा गये, कुछ घायल हो गये, कुछ मर गये, नावे बजरे से टकरा कर डूब गयी—वहाँ जल बहुत गहरा नही था, बहाव भी कोई तेज नही था—इसलिए अधिकाश बच गये। किंतु बजरे को फिर कोई देख न सका। नक्षत्र की तरह उड़ता हुआ बजरा तूफान के साथ मिलकर न जाने कहा चला गया, अग्रेज सेना छिन्न-भिन्न हो गई। देवी उनको परास्त कर पाल उडाती चली गयी। लेफ्टिनेण्ट साहब और हरबल्लभ देवी के कैदी हो गये। निमेष मात्र मे विजय प्राप्त हो गई। देवी ने इसलिये आकाश देखते हुए कहा था कि मेरी रक्षा का उपाय भगवान् कर रहे है।

आठवां परिच्छेद

बजरा जलराशि को चीरता झकझोरता हुआ नक्षत्र गति से चल पडा। बजरे के मुख से तरगो के टकराने का शब्द भयानक था—तूफान का गर्जन भी भयंकर था। किंतु बजरे की रचना ऐसी अनुपम थी, नाविक ऐसे दक्ष और कुशल थे कि इस आधी का सामना करता चार पालों के सहारे बजरा निर्विघ्न चलने लगा। जो लोग कद्दू की तरह लुढक पडे थे वे सभी अपने अपने ठिकाने पर आ जमे। हरबल्लभ अँगूठे मे जनेऊ लपेट दुर्गानाम जपने लगे, लेफ्टिनेण्ट साहब ने फिर घूँसा मारने को हाथ ऊपर उठाया। ब्रजेश्वर ने उनका हाथ पकड़ लिया। हरबल्लभ ने लडके की भर्त्सना कर कहा-यह क्या कर रहे हो? साहब पर हाथ उठाते हो?

बृजेश्वर बोला—मैं हाथ उठा रहा हूं, या अग्रेज मुझ पर चोट कर रहा है?

हरवल्लभ ने साहब से कहा—हुजूर वह अभी लडका है, उसे इतनी समझ नही है। आप इसके कसूर का ख्याल न करे। उसे माफ कर दे।

साहब ने कहा—यह बहोट बडमाश हाय। लेकिन माफी माँगने पर हम इसको माफ कर सक्टा हाय।

हरवल्लभ—व्रज, यही करो। हाथ जोड कर साहब से माफी माँगो।

व्रजेश्वर—साहब, हम लोग हिन्दू है, हम कभी पितृ आज्ञा उल्लघन नही करते। मै आप से हाथ जोड कर माफी माँगता हू, मुझे माफ कीजिये।

साहब ने व्रजेश्वर की पितृभक्ति पर प्रसन्न हो उसे माफ कर दिया, और व्रजेश्वर का हाथ अपने हाथ मे लेकर अच्छी तरह हिला दिया। व्रजेश्वर के पुरखो मे से भी कोई शेकहैण्ड का महत्व नही जानता था इसलिये व्रजेश्वर जरा भौचक सा हो गया। उन्होने सोचा कही फिर लडाई न होने लगे। अत वह बाहर जा बैठा। केवल आधी रुक गयी थी, वर्षा बहुत नही थी भीगना नही पडा।

रगराज भी बाहर आकर, दरवाजा बाहर से बन्द कर, उस पर पीठ टेक कर बैठ गया। विशेष कर ऐसे समय मे बहुत सतर्क रहना ही अच्छा है, बजरा तीव्र वेग से जा रहा है हठात् विपद् आ जाना कोई आश्चर्य नही है।

दिवा उठकर देवी के पास चली गयी, उस मण्डली मे अब उसकी कोई जरूरत नही थी। निशि नही उठी। उसे कुछ करना शेष था। उसका सर्वस्व श्रीकृष्ण मे समर्पित था—इसलिए उस मे अगाध साहस था।

साहब रोब के साथ फिर चाँदी की कुर्सी पर जम गये। सोचने लगे कि इन डाकुओ के हाथ से कैसे छुटकारा पाऊँगा। जिस को कैद करने आया था, उसने उल्टे मुझे ही कैद कर लिया—एक स्त्री से हार खा गया—अब सोसायटी में कौन सा मुँह दिखाऊँगा? मेरा न लौटना ही मुनासिब है।

हरवल्लभ फिर बैठने की जगह न पा निशि सुन्दरी की मसनद के पास जा बैठे। निशि ने धीरे से कहा—आप सोना चाहते हैं क्या?

हर—आज अब क्या नीद आवेगी?

निशि—आज न सोने से तो फिर कभी न सो सकेंगे।

हर—क्यों! यह क्या कहती हो?

निशि—फिर सोने के लिए दिन कब नसीब होगा?

हर०—क्यों ?

निशि—आप देवी चौधरानी को गिरफ्तार कराने आये थे।

हर—यह तुम जानती हो ?

निशि—गिरफ्तार हो जाने पर देवी की क्या दशा होती, जानते हो ?

हर–एँ !

निशि—कोई खास बात नही, सिर्फ फांसी होती।

हर–अरे नही ! यह नही।

निशि–देवी ने तुम्हारा कोई अनिष्ट नही किया वरन् उन्होने तुम्हारा भारी उपकार किया था—जब तुम्हारी इज्जत जा रही थी। प्राण संकट में थे तब तुम्हें पचास हजार रुपये नकद देकर उन्होंने तुम्हारी रक्षा की थी। उसके बदले मे तुम उन्हे फाँसी दिलाने की चेष्टा में थे। तुम्हारे लिए योग्य दण्ड क्या है बताओ तो ?

हरबल्लभ की घिग्घी बँध गयी। निशि कहने लगी—इसीलिए मैं कह रही थी कि आज भर सो लो, दूसरी रात्रि नसीब न होगी। बजरा कहाँ जा रहा है, जानते हो ?

हरबल्लभ की बाक चेतना ही लुप्त हो चुकी थी।

निशि कहने लगी—"डाकिनियो का श्मशान" नामक एक बहुत बडा श्मशान है। जिन्हे हम प्राण दण्ड देते है, वही उनका बध किया जाता है। इस समय बजरा वही जा रहा है। वही साहब को फाँसी देने का, रानी जी का हुकुम हो गया है और तुम्हारे लिए क्या हुकुम हुआ है जानते हो ?

हरबल्लभ रोने ल ा। हाथ जोड कर बोला–मुझे बचाओ।

निशि बोली—तुम को बचा लें, ऐसा नीच पाखण्डी कौन है। तुम को शूली पर चढाने की आज्ञा दी गयी है।

हरबल्लभ फूट २ कर रोने लगा। तूफान की आवाज तेज हो गयी। उस रोने की आवाज ब्रजेश्वर को सुनाई नही पड़ी, देवी को भी नही। साहब ने सुनलिया। साहब को और बातें सुनाई नही पडी थी, रुलाई उसने सुन ली। साहब ने धमकाया—रोटा हाय उल्लू ! मरना एक रोज सबको हाय।

उन बातों पर ध्यान देकर बूढा ब्राह्मण रोने लगा। बोला—अरे मुझे क्या कोई बचा नही सकता।

निशि—तुम जैसे नीच व्यक्ति को बचाकर कौन पातक मोल लेगा ? रानी जी दया की मूर्ति हैं, किन्तु तुम्हारे लिए उन से दया की याचना कौन करेगा ?

हर—मै एक लाख रुपया दूंगा ।

निशि—मुख से यह निकालने मे शर्म नहीं आती ? पचास हजार रुपये के लिये तुमने यह कृतघ्नता की, आज एक लाख रुपया सुना रहे हो ?

हर—मुझ से जो कहो वही करूँगा ।

निशि—तुम जैसे नीच से क्या काम बन सकता है ?

हर—छोटे से छोटे जीव से भी उपकार हो जाता है । अरे ! क्या करना होगा बताओ, मैं जीजान से करूँगा—मुझे बचा लो ।

निशि—(सोचते-सोचते) अच्छा, तुमसे मेरा एक काम हो भी सकता है किन्तु तुम्हारे जैसे व्यक्ति से कोई उपकार न होना ही अच्छा है ।

हर—मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ—पैर पड़ता हूँ,—कहते हुये आतुर की तरह हाथ बढ़ाकर निशि ठकुरानी के कगन पहने हुए हाथ को उसने प्राय' पकड़ ही लिया था कि चतुर निशि ने हाथ हटा लिया । बोली—खबरदार ! यह हाथ श्रीकृष्ण ने ग्रहण किया है, हाथ पैर पकड़ने की जरूरत नही है । यदि तुम इतने कातर हो गये हो, तो तुम्हारे बचने का उपाय कुछ करूँगी । किन्तु जरा भी विश्वास नही होता । तुम बड़े धोखेबाज, कृतघ्न और पामर हो । गोइदागिरी करते हो । तुम्हारी बातो का विश्वास कैसे हो ?

हर—जो भी शपथ कहो, वही लेने को तैयार हूँ ।

निशि—तुम्हारी शपथ का क्या भरोसा ? किसकी शपथ लोगे ?

हर—गंगाजल, ताँबा, तुलसी सब को—मैं स्पर्श करके शपथ ले सकता हूँ ।

निशि—ब्रजेश्वर के सिर पर हाथ रख कर शपथ ले सकते हो ?

हरबल्लभ गरजा-तुम लोगों की जो इच्छा हो, करो । मैं यह न करूँगा ।

किन्तु यह तेज क्षण भर के लिए था । हरबल्लभ तब फिर हाथ मलने लगा । बोला—और जो भी शपथ कहो ले सकता हूं, मुझे बचाओ ।

निशि–अच्छा शपथ न लो–तुम हमारे हाथ में हो । सुनो, मैं बहुत ही कुलीन की लड़की हूँ । हमारे यहां लड़की के लिये वर मिलना कठिन होता है ।

मेरे लिए तो किसी तरह एक मिल गया था किन्तु मेरी छोटी बहन का आज तक विवाह नही हो सका है।

हर–उम्र कितनी है ?

निशि—पच्चीस-तीस ।

हर—कुलीन घरानो मे ऐसी लडकियाँ अनेक रहती है।

निशि—रहती तो है किन्तु अब उसका विवाह न होने मे वह नीचे घर मे पड जायगी। यदि तुम मेरी बहिन से ब्याह कर लो, तो मेरे बाप की कुल मर्यादा बच जायगी। मै भी यह कह कर रानी से तुम्हारे प्राणो की भीख मागूंगी !

हरबल्लभ के माथे पर से मानो पहाड उतर गया। एक विवाह ही तो और करना है–कुलीन के लिये यह कोई कठिन काम नही है–लडकी चाहे जितनी बडी क्यो न हो। निशि ने जिस उत्तर की आशा की थी, ठीक वही उत्तर हरबल्लभ ने दिया—यह कौन सी बडी बात है। कुलीन की मर्यादा रखना कुलीन का ही काम है। किन्तु बूढा हो गया हूँ, मेरी अवस्था अब विवाह योग्य नहीं है। मेरे लडके से विवाह करने से काम न चलेगा ?

निशि वे राजी होगे ?

हर—मेरे कह देने से ही ठीक हो जायगा।

निशि—तो तुम कल प्रात.काल उसे आज्ञा दे देना। तब मैं पालकी पर तुमको घर भेज दूंगी। पहले घर पहुँच कर तुम 'बहूभात' की तैयारी करो। हम वर की भाँवर हो जाने पर बहू के साथ उसे घर भेज देगी।

हरबल्लभ को स्वर्ग-सुख का सा आनन्द हुआ। कहाँ शूली पर चढ़ने की नौबत थी, कहाँ बहूभात की धूम। हरबल्लभ को विलम्ब अब असह्य था। उसने कहा—तो तुम जाकर रानी जी को अभी यह सब बाते बता दो।

निशि–मैं जा रही हूँ। कहकर दूसरे कमरे मे चली गई।

साहब ने हरबल्लभ से पूछा—वह औरट टुम से क्या कहटा था ?

हर—ऐसी कोई खास बात नही है।

साहब—टुम रो क्यो रहा था ?

हर—कहा, नही तो।

साहब—बंगाली ऐसा ही झूठा बोलता हाय।

भीतर आ जाने पर, देवी ने निशि से पूछा—मेरे ससुर से तुम इतनी देर से क्या बतला रही थी।

निशि—देख रही थी कि तुम्हारी सास मैं बन सकती हूँ या नहीं।

देवी—निशि ठकुरानी ! तुमने मन, प्राण, जीवन, यौवन सर्वस्व श्रीकृष्ण मे अर्पण कर दिया है—सिर्फ चालबाजी अपने लिये बचा रक्खी है।

निशि - देवता को उत्तम सामग्री ही अर्पित की जाती है, खराब नहीं।

देवी—तुम मरकर नरक मे सड़ोगी।

———

नवां परिच्छेद

तूफान थम गया, नाव भी ठहर गई। बजरे की खिड़की से देवी ने देखा कि प्रभात हो गया है। बोली—निशि ! आज है सुप्रभात।

निशि ने कहा—सचमुच; आज है सुप्रभात।

दिवा—तुम हो अवसान, मैं हूँ सुप्रभात।

निशि—जिस दिन मेरा अवसान होगा, मै उसे ही सुप्रभात कहूँगी। अन्धकार का अवसान नहीं। आज मै समझी कि देवी चौधरानी का सुप्रभात है—क्योंकि आज देवी रानी का अवसान है।

दिवा—क्या बकती है, मुँहजली ?

निशि—बात ठीक है। देवी मर गई, प्रफुल्ल अपनी ससुराल जा रही है।

देवी—इसमें अभी देर है। जो कहती हूँ करो, बजरा बाँधने के लिए कहो।

निशि ने हुकुम दे दिया—माझियो ने बजरे को किनारे कर बाँध दिया। उसके बाद देवी ने कहा—रंगराज से पूछो हम लोग कहां आ गये है ? रंगपुर कितनी दूर है, भूतनाथ कितनी दूर हैं।

रंगराज ने बताया-एक रात मे चार दिन का रास्ता पार किया है। रंगपुर यहाँ से लम्बा रास्ता है। स्थल मार्ग मे एक दिन मे भूतनाथ जाया जा सकता है।

पालकी-कहार मिल जायँगे ?—देवी ने पूछा।

रंग – मैं चेष्टा करूंगा तो सब मिल जायेंगे।

फिर देवी ने दिवा से कहा–मेरे ससुर को संध्या-पूजन के लिए नीचे उतार दो।

दिवा—इतनी जल्दी क्या है ?

निशि–ससुर का लडका सारी रात बाहर बैठा रहा है याद नही है ? बेचारा समुद्र लाघ कर लका आने मे असमर्थ हो रहा है, यह क्या तुम नही देखती ?

तब निशि ने रगराज को बुलाकर हरबल्लभ के सामने ही कहा–साहब को फाँसी दी जायगी। इस ब्राह्मण को अब शूली चढाने की जरूरत नही है। उसको पहरेदारो के साथ स्नान सन्ध्या-वन्दन के लिये भेज दो।

हरबल्लभ ने कहा मेरे लिए कुछ हुक्म हुआ है ?

निशि ने आँख दबा कर कहा—मेरी प्रार्थना मजूर हो गई है। तुम स्नान-पूजा करके आ जाओ।

निशि ने रगराज के कान में धीरे से कहा—पहरेदार के मानी है शिष्ट आचरणीय भृत्य। फिर हरबल्लभ को स्नान सध्योपासन के लिए उतार दिया।

देवी ने निशि से कहा—साहब को छोड देने की आज्ञा दे दो। और कहो कि रंगपुर लौट जाये। रंगपुर बहुत दूर है, इसलिये खर्च के लिए एक सौ मोहरे उन्हे दे दो।

निशि ने सौ स्वर्ण मुद्राएं रंगराज को दे दी। उसके कान मे फिर कुछ कहा। देवी ने जो कुछ कहा था, उससे कुछ अधिक उसने कहा।

रगराजने तब दो बरकन्दाजो के साथ आकर साहब को पकडा; कहा–उठो।

साहब—कहां जाना होगा ?

रंग—तुम कैदी हो यह पूछने का तुम्हे हक नही है ?

साहब बिना कुछ कहे, रगराज के पीछे-पीछे दो बरकन्दाजों के बीच चलने लगा। जिस घाट पर हरबल्लभ स्नान कर रहे थे उसी के पास मे वे जा रहे थे।

हरबल्लभ ने पूछा—साहब को तुम कहाँ ले जा रहे हो ?

रंगराज ने कहा—इस जंगल मे।

हर—क्यों ?

रंग – जंगल के भीतर ले जाकर इसे फांसी दूंगा।

हरबल्लभ का शरीर कांपने लगा। सन्ध्या वन्दन के सभी मन्त्र भूल गये।

रंगराज ने साहब को जंगल में ले जाकर कहा—हम किसी को फांसी नही देते । तुम अपने घर जाओ, अब हम लोगो के पीछे मत पडना ।

साहब पहले तो आश्चर्य मे पड गया । फिर उसने सोचा—अंग्रेज को फासी देने की हिम्मत बगाली मे कैसे हो सकती है ?

उसके बाद रगराज बोला—साहब ! रंगपुर यहाँ से बहुत दूर है, कैसे जाओगे ?

साहब—जैसा भी होगा ।

रंग—या तो भाडे की गाडी ठीक कर लो, या किसी गाव मे जाकर घोड़ा खरीद लो । हमारी रानी ने तुम्हारे लिए एक सौ मोहरे राह-खर्च के लिए दी है।

रंगराज मोहरे गिनकर देने लगा । साहब ने पाच मोहरे लेकर बाकी नही ली । बोला—इतना काफी हाय । दुबारा करज रहेगा ।

रग—अच्छा, हम जब तुम्हारे पास वसूल करने आवे, तो कर्ज चुका देना । और तुम्हारे सिपाहियों मे से यदि कोई घायल हो गया हो तो उसको भेज देना।

साहब—क्यो ।

रग—ऐसे लोगो को रानी कुछ दान देती है ।

साहब ने विश्वास नही किया । भला-बुरा कुछ भी न कहकर वह चला गया।

रगराज पालकी-कहारो की खोज मे निकल गया । उसको यही आदेश था।

———

दसवां परिच्छेद

इधर रास्ता साफ देख ब्रजेश्वर धीरे-धीरे देवी के पास आ बैठे ।

देवी ने कहा—अच्छा हुआ, तुम आ गये । तुम्हारी आज्ञा के बिना आज का काम नही हो सकता था । तुमने मुझे प्राण-रक्षा की आज्ञा दी थी, इसलिए मैंने प्राण रक्षा की है । देवी चौधरानी मर चुकी है । किंतु प्रफुल्ल अभी है । प्रफुल्ल रहे, या देवी के साथ चली जाय ?

ब्रजेश्वर ने आदरपूर्वक प्रफुल्ल का मुख चूम लिया और कहा—तुम मेरे घर चल कर उसे आलोकित करो । तुम न चलोगी, तो मैं भी न जाऊँगा ।

प्रफुल्ल—मैं घर जाऊँगी तो ससुर जी क्या कहेंगे ?

ब्रज इसका भार मेरे ऊपर है। तुम किसी तरह उनको पहले घर भेज दो। हम लोग पीछे चलेगे।

प्रफुल्ल—पालकी कहार लाने आदमी गया है।

पालकी कहार शीघ्र ही आ गये। हरवल्लभ भी सन्ध्या पूजा से निवृत हो बजरे पर लौट आये। उन्होने देखा, निशि ठकुरानी, खीर, छेना, मक्खन और सुपक्व आम केला आदि फल उनके जलपान के लिए सजा रही हैं। निशि ने विनयपूर्वक उनको बैठा कर कहा—अब आप मेरे रिश्तेदार हो गये है; जल-पान किये बिना आप जा न सकेंगे।

हरवल्लभ जलपान के लिए न बैठे, बोले—अरे ब्रजेश्वर कहा है? कल रात वह उठकर बाहर चला गया था तब से मैंने उसे नही देखा।

निशि—वे मेरे बहनोई होने वाले हैं, उनके लिए आप चिन्ता न करें। वे इसी जगह हैं मै उनको बुला देती हूँ। उन्हे आज्ञा देकर आप चले जाइये।

हरवल्लभ जलपान के लिए बैठ गये। निशि ब्रजेश्वर को बुला लाई। पिता पुत्र का सामना होते ही दोनो कुछ सकपका गये। हरवल्लभ ने सोचा—मेरा चांद सरीखा लड़का देख ये डायिनी औरते मोहित हो गई है। अच्छा ही हुआ।

हरवल्लभ ने ब्रजेश्वर से पूछा—बेटा, तुम यहा कैसे आगये, यह पूछना तो मैं भूल ही गया था। खैर छोड़ो इस बात को—इस समय उसकी जरूरत नही है। इस समय मै एक ऐसे आग्रह के फेर मे पड गया हूँ जिसे टालना बहुत कठिन है। यह ठकुरानी अच्छे कुलीन घर की लडकी है—इनके पिता हमारे बराबरी के वंश के हैं—इनकी एक कुवारी बहन है जिनके योग्य पात्र नही मिल रहा है। कुलीन की मर्यादा की रक्षा करना कुलीन का ही धर्म है—मोटिया मजूर का यह काम नही। तुम भी और एक विवाह करके अपनी गृहस्थी बांध लो, मैं और तुम्हारी मा भी यही चाहती है। विशेषत: बडी बहू की मृत्यु के बाद से हम इस सम्बन्ध मे बहुत दु:खी हो गये हैं। इसीलिए इनका अनुरोध मान लेना ही कर्तव्य हो गया है। मैं अनुमति दे रहा हूँ, तुम इनकी बहन से ब्याह कर लो।

ब्रजेश्वर ने संक्षेप मे उत्तर दिया—जैसी आज्ञा।

निशि को मन ही मन बडी हँसी आयी, किन्तु वह हँसी नही।

हरवल्लभ कहने लगे मेरे पालकी कहार आ गये हैं, मैं घर जाकर बहूभात

की तैयारी करूँ तुम शास्त्र विधि से विवाह करके बहू को साथ ले शीघ्र आ जाना।

ब्रज—जैसी आज्ञा।

हर—तुम से और क्या कहूँ, तुम अब कोई लडके नही रहे। कुल, शील, जाति, मर्यादा सब स्वयं देख सुनकर विवाह करना। (बाद को आवाज धीमी करके कहने लगे) हम लोगो का जो कुछ उचित दहेज होता है, उसे तो तुम जानते ही हो?

ब्रज—जैसी आज्ञा।

हरबल्लभ जलपान करके बिदा हो गये। ब्रज और निशि ने उनकी पद-धूलि ले ली। वे पालकी मे सवार हो लम्बी साँस ले दुर्गानाम जपने लगे, मानो पुनर्जीवन मिला। उन्होंने सोचा—लडका डाकिनी औरतो के हाथ मे रह गया—किंतु कोई डर नही है। लड़का अपना रास्ता पहचानता है। सुन्दर मुखड़े की जीत सर्वत्र होती है।

हरबल्लभ चले गये। ब्रजेश्वर ने निशि से पूछा—यह सब क्या है? तुम्हारी छोटी बहन कौन है?

निशि—पहचानते नही? उसका नाम है प्रफुल्ल।

ब्रज—ओहो! मैं समझ गया, इस सम्बन्ध मे तुमने पिताजी को कैसे राजी कर लिया?

निशि—स्त्रियाँ बहुत सी युक्तियाँ जानती हैं। छोटी बहन की सास कोई नहीं बन सकती—नही तो एक और सम्बन्ध के लिए मैं उनको राजी कर सकती थी।

दिवा जल उठी। बोली—यह मर भी नही जाती, लाज शरम कुछ भी नहीं रह गई? पुरुषो के सामने ऐसी बातें बकती है?

निशि—यहाँ पुरुष कौन है? ब्रजेश्वर! कल देखा तो था कि कौन पुरुष है, कौन स्त्री?

ब्रज—आज भी कुछ देखोगी। तुम हो स्त्री, स्त्रियों की जैसी मोटी बुद्धि का काम तुमने किया है। यह अच्छा नही हुआ।

निशि—क्या मतलब?

ब्रज—बाप के साथ क्या प्रवञ्चना चलती है? बाप की आँखों में धूल झोंक झूठ को सच बनाकर मैं प्रफुल्ल को लेकर गृहस्थी सम्हालूँगा? यदि बाप को धोखा दे दूँ, तो संसार मे किसको धोखा देने मे मुझे हिचक हो सकेगी?

निशि हतबुद्धि सी हो गई, मन ही मन वह मान गई कि ब्रजेश्वर वास्तविक पुरुष है, केवल लट्ठबाजी करने से ही कोई पुरुष नही कहलाता। निशि यह बात समझ गई। बोली– अब उपाय ?

ब्रज–उपाय है। चलो, प्रफुल्ल को लेकर घर चले। वहां चल कर पिता जी को सभी बाते सच-सच बता दूंगा। कोई दुराव न रक्खूंगा।

निशि–यह जानते हुए तुम्हारे पिता क्या देवी चौधरानी को घर मे घुसने देगे?

देवी ने कहा—देवी चौधरानी कौन है ? देवी चौधरानी मर गई, उसका नाम इस ससार मे मुंह से भी मत निकालना। प्रफुल्ल कहो, प्रफुल्ल !

निशि—प्रफुल्ल को भी क्या वे अपने घर मे स्थान देगे ?

ब्रज—मैंने कहा न कि इसका भार मेरे ऊपर रहा।

प्रफुल्ल सन्तुष्ट हो गई। वह समझ गई थी कि ब्रजेश्वर मे भार उठाने की शक्ति न होती तो वह भार लेने को तैयार न होता।

ग्यारहवां परिच्छेद

तब भूतनाथ जाने की तैयारी शुरू हो गई। रगराज को उस जगह से बिदा कर देने का निश्चय हुआ। क्योंकि वृजेश्वर के दरबानो ने एक दिन उसकी लाठी की मार खाई थी। यदि वे देख लेगे तो पहचान जायेंगे। रंगराज को बुलाकर सभी बाते समझा दी गयी। कुछ तो निशि ने समझाया, कुछ प्रफुल्ल ने समझाया रंगराज रो पडा। बोला–मा ! हमे त्याग देंगी, यह तो मैं कभी नही जानता था। सब ने मिलकर रगराज को सांत्वना दी। प्रफुल्ल का घर बार देवीगढ़ में था। वहा देवसेवा का बन्दोबस्त था, देवोत्तर सम्पत्ति थी। उस सब को प्रफुल्ल ने रंगराज को दे दिया, कहा–वहां ही जाकर तुम रहो। देवता को भोग चढ़ता है, प्रसाद खाकर गुजारा करना। फिर कभी लाठी मत पकड़ना। तुम लोग जिस को परोपकार कहते हो वह तो एक तरह से परपीडन है। मोटी लाठी के द्वारा परोपकार नही होता। दुष्ट का दमन यदि राजा नही करते तो ईश्वर करेंगे। तुम हम कौन हैं। सज्जनों के पालन का भार लेना, किंतु दुष्ट के दमन का भार ईश्वर के

ऊपर रख देना। मेरी तरफ से सब बातें भवानी ठाकुर से भी कहना। उनको मेरा कोटि कोटि प्रणाम कह देना!

रंगराज रोते रोते बिदा हो गया। दिवा और निशि साथ-साथ भूतनाथ के घाट तक चली गयी। उसी बजरे से लौट कर वे देवीगढ जाकर निवास करेंगी, प्रसाद खाकर जीवन धारण करेंगी, और हरिनाम जपेंगी। बजरे मे देवी की रानीगिरी के सब असबाब थे, पाठकों ने देखा है, उनका मूल्य अत्यधिक था। प्रफुल्ल ने सब दिवा और निशि को दे दिये। कहा—इन सब को बेचकर जो हो उसमे से अपने लिए जितने की जरूरत हो, उतना व्यय करना बाकी दरिद्रो को देना। यह सब मेरा कुछ भी नही है। मै इसमे से कुछ भी न लूँगी। यह कह कर प्रफुल्ल ने अपने बहुमूल्य आभूषण निशि और दिवा को दे दिये।

निशि ने कहा—मा, बिना गहने पहने ससुराल जाओगी।

प्रफुल्ल ने ब्रजेश्वर को दिखाते हुए कहा—स्त्रियों का यह आभूषण सर्वश्रेष्ठ है। दूसरे आभूषणों की जरूरत ही क्या है बहन?

निशि—आज तुम पहली बार ससुराल जा रही हो, मैं आज तुमको कुछ भेंट कर आशीर्वाद दूंगी। तुम मुझे न रोकना। यही मेरी साध है, साध मिटा लेने दो।

यह कह कर निशि बहुमूल्य रत्नालंकारों से प्रफुल्ल को सजाने लगी। सब कामों से निपट कर तीनों गले मिलकर रोने लगी, निशि गहने पहनाते समय ही रो पडी थी, दिवा भी फूट पडी, उसके बाद शहनाई मे सब समा गया। प्रफुल्ल रोई नही-रोने की बात ही क्या थी? तीनों में आन्तरिक प्रेम था। किंतु प्रफुल्ल का मन आह्लाद से परिपूर्ण था, निशि ने भी देखा कि प्रफुल्ल सुख से गद्‌गद् है। निशि भी उसके सुख से सुखी हुई। रोते-रोते वह भी द्रवित हो गई थी।

ठीक समय पर बजरा भूतनाथ घाट पर जा पहुँचा। दिवा और निशि के पैरों की धूल ले प्रफुल्ल उन लोगों से बिदा हो गई। वे रोते-रोते उसी बजरे पर लौट गयीं और ठीक समय पर देवीगढ जा पहुँची। माझी मल्लाह बरकन्दाजों का वेतन चुकता कर उन्हें जबाव दे दिया। बजरे को रखना ठीक नही था—बहु परिचित बजरा था वह, प्रफुल्ल ने भी कह दिया था—कि उसे मत रखना। निशि ने बजरे को कटवा कर दो वर्ष तक उसका ईंधन जलाया।

बारहवां परिच्छेद

भूतनाथ के घाट पर ज्यों ही प्रफुल्ल का बजरा जा लगा, त्यों ही, कौन जाने, कैसे चारों ओर खबर फैल गई, कि ब्रजेश्वर एक और ब्याह कर लाया है। बहू की उम्र बहुत अधिक है। यह अफवाह सुन लडके, बुढिया, कानी, लगड़ी, जो जहा ही थी, सभी बहू देखने दौड पडी। कोई रसोई पकाते से हांडी छोड़कर दौडी, कोई मछली काट रही थी, टोकरी से उसे ढक कर चल दी। एक स्नान करते समय भीगे कपडे पहने दौडी, तो दूसरी सामने परोसी थाली से अध खाये ही उठकर भाग गई। तीसरी किसी से झगड़ रही थी, सहसा विरोधीपक्ष से उसका मेल हो गया। कोई अपने बच्चे को पीटने उठी थी, किंतु बहू की खबर से वह बच गया। वह भी मा की गोद मे चढ बहू को देखने चला गया। किसी के पति चौके मे बैठे है, थाली मे दाल तरकारी परोसी जा चुकी है, मछली का झोल अभी नही परोसा गया है कि इस खबर से पतिदेव उस दिन बिना मछली के झोल ही के रह गये। एक बुढिया अपनी नातिन से बिगड रही थी कि मुझे टेकाकर न ले जाने से मैं कैसे पोखरी पर जाऊंगी? इतने ही मे बहू के आने का हल्ला मच गया। बस नातिन को छोड कर बहू देखने चली गई। दादी भी किसी तरह वही जा पहुँची। एक युवती सास की डाट खाकर शपथ ले रही थी कि वह कभी घर से बाहर नही निकलती। तब तक यह अनोखी खबर पहुँच गई, शपथ पूरी भी नही हुई थी कि युवती बहू के घर की तरफ लपक गई। मा बच्चे को छोड़कर चली गई। बच्चा मा के पीछे-पीछे रोता-रोता दौड़ चला। पति और जेठ बैठे हुए हैं किंतु बहू को सामने से निकलते समय घूंघट खीचने का होश नही रहा। दौडते समय युवतियो के कपड़े खुल जाते, सम्हाल कर पहनने का अवकाश ही नही था। बाल खुल जाते, उन्हे समेट लेने की मोहलत कहां थी? कहाँ का कपड़ा कहाँ चला गया, इसका भी कुछ ठिकाना नही था। अजीब शोर गुल मच गया। लज्जा व संकोच-शर्म न जाने कहाँ गड़ गई।

वर-कन्या दोनो चौक पर खडे है, मालकिन बहू को यथाविधि अंक मे ले रही हैं बहू का मुख देखने को सभी झुक रही हैं, किंतु बहू ने डेढ हाथ लम्बा घूंघट खींच रक्खा है, कोई उसे देख नही पाती। सास ने बहू को ग्रहण करते

समय घूँघट हटा कर बहू का मुख देखा। वे जरा चौंकी। उन्होंने कहा, कुछ नही, बस बोली—बहू अच्छी है। उनकी आँखो मे आँसू छलक आये।

विधिपूर्वक गृह प्रवेश हो जाने पर सास ने जमा हुई पडोसिनो से कहा—लडका बहू के साथ बहुत दूर से भूखा प्यासा आया है, मैं अब उन्हे कुछ खिलाऊँ पिलाऊँ। बहू तो घर ही मे रहेगी, तुम लोग नित्य ही देखोगी। अब अपने घर जाकर खाओ पिओ।

मालकिन की इस बात से अप्रसन्न हो बडबड़ाती हुई पडोसिने अपने अपने घर चली गयी। दोष था सास का, किंतु निंदा बहू की ही अधिक हुई। क्योंकि किसी को मुँह देखने को नही मिला था। अधिक उमर की कह कर सभी ने नाक सिकोड़ ली। फिर सभी ने कहा—कुलीनो के घर ऐसे ही काम होते हैं। तब प्रत्येक कुलीन घर की बडी उम्र की बहुओ का प्रसंग छिड गया। गोविंद मुखर्जी ने पचपन वर्ष की एक स्त्री से विवाह किया था, हरिचटर्जी सत्तर वर्ष की एक कुमारी को घर ले आये थे, मनु बनर्जी ने अन्तिम समय मे एक का पाणिग्रहण किया था। धीरे-धीरे यह सब शान्त हुआ। वातावरण में निस्तब्धता आ गई।

कई दिन बाद गृहिणी ने एकान्त में ब्रजेश्वर को पुकारा। ब्रज ने आकर पूछा—क्या मा ?

गृहिणी—बेटा, यह बहू तुमको कहाँ मिल गई ?

ब्रज—यह नया विवाह नहीं है मा !

गृहिणी—अरे यह खोई हुई लक्ष्मी तुझे कहां मिल गई बेटा ?

गृहिणी की आँखो से प्रेमाश्रु बह रहे थे।

ब्रज—मा, ईश्वर की कृपा से यह हुआ है। किन्तु मा तुम बाबू जी को कुछ मत बताना। एकान्त मे मैं ही उनसे सब खोल कर कहूँगा।

गृ०—तुम्हें कुछ कहने की जरूरत नही बेटा, मैं ही सब कहूँगी। बहूभात की दावत हो जाने दो। तुम कुछ भी चिन्ता मत करना। अभी किसी से कुछ मत कहना।

ब्रजेश्वर ने स्वीकार किया। इस कठिन कार्य का भार मा ने लिया। ब्रज बच गया। किसी से कुछ भी नहीं कहा। रसोई छूबे की रस्म निर्विघ्न हो गई।

ठाट बाट से बहुत नही हुआ, बस इने-गिने कुछ आत्मीयजनो और सम्बन्धियों को निमन्त्रण देकर हरवल्लभ ने कार्य सम्पन्न किया। एक दिन गृहिणी ने हरवल्लभ से असल बात खोलकर कह दी। उन्होने बताया कि—यह ब्याह नया नही है, वही बडी बहू है।

हरवल्लभ चौक पडे–सोये बाघ को जैसे किसी ने तीर से बिंध डाला हो–ऐ ! वही बडी बहू ! किसने कहा ?

गृहिणी—मै पहचान गई हूँ और व्रज ने भी मुझे बताया है।

हर०—वह तो दस वर्ष पहले मर चुकी थी।

गृहिणी—मर कर भी क्या कोई लौट आता है ?

हर०—इतने दिनो तक कहा किसके पास थी ?

गृ०—यह तो मैंने व्रज से पूछा नही, पूछूँगी भी नही। व्रज जब उसे घर ले आया है, तब बिना समझे बूझे तो लाया नही हे।

हर०—मैं पूछूँगा।

गृ०—मेरे सिर की कसम। तुम उसे कुछ मत कहना ! तुमने एक बार कह दिया था जिसके फलस्वरूप लडका हाथ से बेहाथ हुआ जा रहा था। मेरा एक ही लडका है। मेरे सिर की कसम, तुम एक भी बात उससे मत कहना। यदि तुम कुछ भी कहोगे तो मै फन्दा लगाकर प्राण दे दूँगी।

हरवल्लभ ससेट गये। उन्होंने कुछ नही कहा। बोले—लो लोगो के सामने नई बात ही प्रचारित रहे। गृहिणी ने स्वीकृति दे दी। दूसरे समय उन्होंने व्रज को शुभ समाचार सुनाया। और हरवल्लभ की आज्ञा भी कह दी।

व्रज ने प्रसन्नचित्त हो प्रफुल्ल को खबर दी।

———

तेरहवां परिच्छेद

प्रफुल्ल सागर को देखने को उत्सुक थी। व्रजेश्वर का इशारा पाकर गृहिणी ने सागर को बुलाने आदमी भेजा। जो आदमी सागर को लेने गया था, उसके मुंह से एक और ब्याह तथा बहू की ज्यादा उम्र की बात सुन, सागर घृणा से बोली

"छिः बुढ़िया !" सागर को क्रोध भी आया। "फिर ब्याह ? हम क्या स्त्रियाँ नही हैं ?" वह मन मे बडी दुःखी थी काश वह भी किसी दरिद्र दुखी की लड़की होती ? बात शायद वह भी उनके पास रह पाती। हो सकता था कि तब वे यह ब्याह न करते।

इस तरह रोष और दुःख का भाव लिये सागर सुसराल आयी। आते ही वह नयान बहू के पास गयी। वैसे दोनों एक दूसरे की आँख का काँटा थीं, किन्तु आज दोनो एक हो गयी। दोनों एक ही आफत मे थी ! इसलिये सागर सीधे नयनतारा के पास गयी।

साँप हाँडी मे बन्द करने से वह जैसे फुफकारता है, प्रफुल्ल के आने के बाद से नयान वैसे ही कष्ट मे थी, केवल एक बार ब्रजेश्वर से वह मिली थी—उसकी गालियों से हारकर ब्रज भाग गया; प्रफुल्ल भी उससे प्रेम दिखाने गयी, तो उसकी भी वही गति हुई। पति और सौत की बात तो दूर, पास पडोस के लोग भी कई दिनो तक उसके पास न जा सके। नयनतारा के कई लड़के लड़कियाँ थी। उन सब पर भारी विपद् आ पड़ी। कई दिनो से मार खाते-खाते उनके प्राण सूख रहे थे।

साक्षात् काली के श्री मन्दिर मे सागर सबसे पहले पहुँची। उसे देख नयनतारा भुनकर बोली—आओ ! आओ ! तुम क्यो बाकी रहो ? और भी हारिन कोई है ?—

सागर—सुनती हूं फिर एक ब्याह कर लिया है ?

नयन—कौन जाने, ब्याह है कि निकाह, इसका हाल मैं क्या जानूं ?

सागर—क्या ब्राह्मण की लडकी का भी दूसरा ब्याह हो सकता है ?

नयन—ब्राह्मण है या शूद्र या मुसलमान है, यह क्या में देखने गयी हूं ?

सागर—ऐसी बातें मुंह से मत निकालो। अपनी कुल मर्यादा की रक्षा सभी का कर्तव्य है।

नयन–जिसके घर मे इतनी सयानी बहू आवे, उसकी भी कोई इज्जत है ?

सागर—कितनी उम्र है ? हम लोगो की क्या गति होगी ?

नयन–तेरी माँ जैसी लगेगी।

सागर–बाल पक गये हैं ?

नयन—बाल न पके होते तो दिन रात वह बुढ़िया घूंघट काढे रहती ?

सागर—दांत गिर गये कि नही ?

नयन—बाल पक गये, दांत क्या नही गिरे होगे ?

सागर—तो तुम्हारा यही कहना है कि पति से उम्र में बहुत बडी है ?

नयन—तो तूने सुना ही क्या है ?

सागर—अरे कही ऐसा भी होता है ?

नयन—कुलीनो के घर में सब होता है ।

सागर-देखने मे कैसी है ?

नयन-रूप की छटा है । मानो गलफूली गोविन्द की मा है ।

सागर—ब्याह करने वाले को तुमने कुछ नही कहा ।

नयन-कहीं देख पाऊँ तब तो । देख लेने भर से ही काम बन जायगा । मुण्डा झाडू सुरक्षित रख दिया है ।

सागर—तो मैं जरा उस सोने की प्रतिमा को देख आऊं ।

नयन-जा, अपना जन्म भी सार्थक करले ।

नयी सौत को ढुढनी सागर ने उसे पोखरी के घाट पर जा पकडा । प्रफुल्ल पीठ पीछे किये बरतन मांज रही थी । सागर ने पीछे से पूछा—हां जी, तुम्हीं हमारी नई बहू हो ?

कौन, सागर ! आ गई क्या ?—यह कह कर नई बहू घूम पड़ी । सागर ने देखा, यह कौन है ! विस्मय से उसने पूछा-देवी रानी ।

प्रफुल्ल बोली—चुप, देवी मर गयी है ।

सागर-प्रफुल्ल ?

प्र०-प्रफुल्ल भी मर गई ।

सा०-तो तुम कौन हो ?

प्र०—मैं हूं नयी बहू ।

सा०-कैसे क्या हो गया, मुझे सब बता दो तो ?

प्र०—यहां बैठने की भी जगह नहीं है । मुझे एक कमरा मिला है । वहीं ही चलो, सब बताऊंगी ।

दोनों दरवाजा बन्द कर एकान्त में बैठ गयीं। बातचीत होने लगी। प्रफुल्ल ने सागर को सब समझाकर बता दिया। सुनकर सागर ने पूछा—अब क्या घर-गृहस्थी में मन लगेगा ? चांदी के सिंहासन पर हीरा का मुकुट पहने बैठ कर रानीगिरी करने के बाद क्या बासन मांजना, घर झाडना-बुहारना अच्छा लगेगा ? योगशास्त्र पढने सुनने के बाद क्या ब्रह्माठकुरानी की कल्पित कहानियां अच्छी लगेगी ? जिसके हुकुम से दो हजार आदमी काम मे लगे रहते थे, उसे अब क्या हरि की मा, पारो की मा का हुकुम मानकर चलना अच्छा लगेगा ?

प्र०—सब भला लगेगा यही समझ कर आयी हूँ। स्त्रियो का परम धर्म यही है। राज्य संचालन करना स्त्री धर्म नही है। यह गृहस्थ धर्म कठिन भी है। इसकी अपेक्षा कोई योग कठिन नहीं। देखो कुछ निरक्षर, स्वार्थपरायण अनभिज्ञ लोगों के साथ हमे बराबर व्यवहार करना पड़ता है। इनमे से किसी को कोई कष्ट न हो, सभी सुखी हों, वही व्यवस्था करनी होगी। इसकी अपेक्षा कौन सन्यास कठिन है ? कौन पुण्य बड़ा है ? मै इसी धर्म का पालन करूंगी।

सा०—तो कुछ दिन मै तुम्हारे पास रहकर तुम्हारी शिष्या बनूंगी।

जिस समय सागर व प्रफुल्ल की यह बातचीत हो रही थी, उसी समय ब्रजेश्वर ब्रह्मा ठकुरानी के पास बैठे भोजन कर रहे थे। ब्रह्मा ठकुरानी ने पूछा—ब्रज अब मैं कैसी रसोई पकाती हू ?

ब्रजेश्वर को वही दस वर्ष पहले की बातें याद आगयी। बातें मूल्यवान थी—इसीलिए दोनों को वे याद थी। ब्रज ने कहा—बहुत ठीक।

ब्रह्मा—अब गाय का दूध कैसा है ?

ब्रज—अच्छा है।

ब्रह्मा—कहाँ, दस वर्ष बीत चुके, मुझे तो अभी तक तूने गंगा में नहीं पहुँचाया ?

ब्रज—मैं भूल गया था।

ब्रह्मा०—तू मुझे गंगा मे मत पहुँचाना। तू बाग्दी हो गया है।

ब्रज०—दादी जी ! चुप रहो ! वह बात अब मत कहो।

ब्रह्मा०—अच्छा तो पहुँचा देना। मैं अब कुछ न बोलूंगी। किंतु देखना बेटा, कोई मेरा चरखा-तकुआ न तोड़ डाले।

* समाप्त *

बंकिम-साहित्य—आनन्दमठ २) विष वृक्ष २) चन्द्रशेखर २) कपाल-कुण्डला २) कृष्णकांत का वसीयतनामा २) देवी चौधरानी २) बंगशार्दूल सीताराम २) राधारानी ।।) दुर्गेशनन्दिनी २) मृणालिनी २) इन्दिरा २) राजसिंह २।।) रजनी २) युगलांगुरीय ।।) लोक रहस्य २) कमलाकांत का पोथा २)

टाम काका की कुटिया—(सचित्र) (छात्र संस्करण) १।।)

बाल-साहित्य—चण्टचौकड़ी ।-) महाराज कपालफोड़ ।-) मायावी सपेरा ।-) डायन राजरानी ।-)

महिला साहित्य—राज्यश्री ।।=) गढ़ मण्डल की रानी ।।=) गार्गी ।।=)

सा-रे-ग-म—हाई स्कूल, इन्टर मीडियेट को सम्पूर्ण शास्त्रीय ज्ञान देने वाली अद्वितीय पुस्तक २।।)

भारतीय कृषि-विज्ञान—(प्रथम खण्ड) 'अन्न' २।।) (द्वितीय खण्ड) 'शाक-सब्जी, मसाला' २।।) (तृतीय खण्ड) 'फल-फूल. २।।)

वैज्ञानिक पशुपालन व चिकित्सा ३)

हमारा भोजन—उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत १।।)

अन्नपूर्णा पाक प्रणाली—षटरस भोजन, शाक-भाजी, मिष्ठान्न, नमकीन, अचार, चटनी, मुरब्बा, निकुल, सत्तू-चबेना आदि भाँति-भाँति के पदार्थों की, अमीरी और गरीबी, घरू और व्यावसायिक, स्वाद और स्वास्थ्य, सभी दृष्टि से पाक-शास्त्र की यह अनूठी और परिपूर्ण पुस्तक है । परिवार मे नित्य जरूरी कुछ औषधियों व पथ्य का भी संग्रह दिया गया है । मूल्य ३।।) डाक खर्च १)

कुरान शरीफ हिंदी ८)

कुरान का पारा अम्म—मूल अरबी हिन्दी मे ।=)

जीवन चरित्र—हजरत अबूबकर ।=) हजरत उमर ।=) हजरत उस्मान ।=) हजरत अली ।=) कुरान पर एक दृष्टि ।-)

प्राप्तिस्थान—

श्री प्रभाकर साहित्यालोक, २३, श्रीरामरोड, लखनऊ

रामायण कृत्तिवास हिन्दी में

श्री गोस्वामी तुलसीदासजी से कई सौ वर्ष पूर्व बंग की पुनीत भूमि में भक्त-शिरोमणि महासंत कृत्तिवास की मंजुल वाणी से प्रवाहित सलिल काव्य 'रामायण-कृत्तिवास' का मुग्धकारी पाठ प्रायः प्रत्येक बंग-भाषी के यहाँ नित्य ही होता रहता है। इस अद्वितीय मनोहर काव्य का हिन्दी भाषा में अभाव अनेक काव्य-प्रेमियों और भक्तों को खटकता था। उसी सरस बंग-काव्य का हिन्दी में सरल चौपाई, दोहा में उत्कृष्ट नूतन रूपांतर हिन्दी-साहित्य के लिये एक अद्‌भुत नई देन है। कृत्तिवास रामायण में सन्त ने बाल्मीकीय, भागवत, योगवाशिष्ठ, अध्यात्म, आनन्द, महारामायण आदि अनेक रामायणों के आधार पर कुतूहल करने वाले नाना-कथा प्रसंगों का वर्णन किया है।

विशेषता यह है कि सन्त कृत्तिवास की मूल बंगाली रचना को भी देवनागरी अक्षरों में हिन्दी-चौपाइयों के साथ ही दे दिया गया है। पाठक देखेंगे कि बंगला भाषा सरल और हिन्दी जानकार के सरलता से समझ में आ जानेवाली, कैसी ललित भाषा है।

बालकाण्ड, में नारद को गोलोक में नारायण का पंचायतन स्वरूप दर्शन, ब्रह्मा द्वारा दस्यु रत्नाकर का परिचय और बाल्मीकि नामकरण, बाल्मीकि मुनि को रामचरित्र का आभास, चन्द्रवंश तथा सूर्य वंशी राजा दण्ड, हारीत, हरिश्चन्द्र, सगर एवं उनके साठ सहस्र पुत्र कपिल-शाप, गंगावतरण, सौदास उपाख्यान, रघु द्वारा इन्द्र-विजय, अज विलाप, दशरथ-श्रवण उपाख्यान, नारायण का चार अंश अवतार जनकपुर में लक्ष्मी-जन्म ताड़का एवं बड़े-बडे राक्षसों का रोमांचकारी युद्ध एवं बध, धनुषयज्ञ, चारों भाइयों का विवाह, परशुराम-दर्प चूर्ण आदि अनेक अन्तर्कथाओं सहित नाना प्रसंगों का वर्णन है। नई कथाओं की भरमार है। पाठकों को एक अद्‌भुत नवीन ग्रन्थ का आनन्द प्राप्त होगा। मूल्य ५) । डाक खर्च १।)

प्राप्तिस्थान—

श्री प्रभाकर साहित्यालोक, २३, श्रीरामरोड, लखनऊ

मुद्रक—दलवारसिंह बघेल, जवाहर प्रिंटिंग प्रेस, मथुरा।